1170

अनेकान्त

आश्विन, संवत् २००५ :: अक्तूबर, सन् १९४८

वर्ष ९

किरण १०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—मदीया द्रव्य-पूजा (कविता)	३६५
२—समन्तभद्र-भारतीके कुछ नमूने (युक्त्यनुशासन)	३६६
३—महावीरकी मूर्त्ति और लङ्गोटी	३६८
४—गाँधीजीकी जैन-धर्मको देन	३६९
५—भारतीय इतिहासमें अहिंसा	३७५
६—अहारक्षेत्रके प्राचीन मूर्ति-लेख	३८३
७—नर्स (कहानी)	३९१
८—अपभ्रंशका एक शृङ्गार-वीर काव्य	३९४
९—चित्र क्षुल्लक श्रीगणेशप्रसादजी वर्णी	४०५
१०—समाज-सेवकोंके पत्र	४०६

★

प्रधान सम्पादक
जुगलकिशोर मुख्तार

सह सम्पादक
मुनि कान्तिसागर
दरबारीलाल न्यायाचार्य
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
डालमियानगर (विहार)

★

★

सञ्चालक-व्यवस्थापक
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

संस्थापक-प्रवर्तक
वीरसेवामन्दिर, सरसावा

★

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्तका

'सन्मति - सिद्धसेनाङ्क'

अनेकान्तकी अगली (११वीं) किरण 'सन्मति-सिद्धसेनाङ्क'के रूपमें विशेषाङ्क होगी, जिसमें अनेकान्तके प्रधान सम्पादक मुख्तारश्री जुगलकिशोरजीका 'सन्मति-सूत्र और सिद्धसेन' नामका एक बड़ा ही महत्वपूर्ण एवं गवेषणापूर्ण खास लेख (निबन्ध) रहेगा, जो हाल ही में उनकी महीनोंकी अनमोल साधना और तपस्यासे सिद्ध हो पाया है। लेखमें सन्मतिसूत्रका परिचय देने और महत्व बतलानेके अनन्तर १ ग्रन्थकार सिद्धसेन और उनकी दूसरी कृतियाँ, २ सिद्धसेनका समयादिक, ३ सिद्धसेनका सम्प्रदाय और गुणकीर्तन नामके तीन विशेष प्रकरण हैं, जिनमें गहरी छान-बीन और खोजके साथ अपने-अपने विषयका प्रदर्शन एवं विशद विवेचन किया गया है और उसके द्वारा यह स्पष्ट करके बतलाया गया है कि सन्मतिसूत्र, न्यायावतार और उपलब्ध सभी द्वात्रिंशिकाओंको जो एक ही सिद्धसेनकी कृतियाँ माना जाता तथा प्रतिपादन किया जाता है वह सब भारी भूल, भ्रान्त धारणा अथवा ग़लत कल्पनादिका परिणाम है और उसके कारण आजतक सिद्धसेनके जो भी परिचय-लेख जैन तथा जैनेतर विद्वानोंके द्वारा लिखे गये हैं वे सब प्रायः खिचड़ी बने हुए हैं और कितनी ही ग़लतफ़हमियोंको जन्म दे रहे तथा प्रचारमें ला रहे हैं। इन सब ग्रन्थोंके कर्ता प्रायः तीन सिद्धसेन हैं, जिनमें कतिपय द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता पहले, सन्मतिसूत्रके कर्ता दूसरे और न्यायावतारके कर्ता तीसरे सिद्धसेन हैं—तीनोंका समय भी एक दूसरेसे भिन्न है, जिसे लेखमें स्पष्ट किया गया है। शेष द्वात्रिंशिकाओंके कर्ता इन्हींमेंसे कोई हो सकते हैं। साथ ही, यह भी स्पष्ट किया गया है कि सन्मतिसूत्रके कर्ता सिद्धसेन दिगम्बर सम्प्रदायके एक महान् आचार्य थे—श्वेताम्बर सम्प्रदायने उन्हें समन्तभद्रकी तरह अपनाया है। अनेक द्वात्रिंशिकाएँ भी दिगम्बर सिद्धसेनकी कृतियाँ हैं। मुख्तार साहबकी इस एक नई खोजसे शताब्दियोंकी भूलोंको दूर होनेका अवसर मिलेगा और कितनी ही यथार्थ वस्तुस्थिति सभीके सामने आएगी, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है।

लेख विस्तृत, गम्भीर तथा विचारपूर्ण होनेपर भी पढ़नेमें बड़ा रोचक है—एकबार पढ़ना प्रारम्भ करके छोड़नेको मन नहीं होता—और उसमें दूसरी भी कितनी ही बातोंपर नया प्रकाश डाला गया है। पाठक इस विशेषाङ्कको देखकर प्रसन्न होंगे और विद्वज्जन उससे अपने-अपने ज्ञानमें कितनी ही वृद्धि करनेमें समर्थ हो सकेंगे, ऐसी दृढ़ आशा है।

परमानन्द जैन शास्त्री

प्रकाशक 'अनेकान्त'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

अनेकान्त

विश्वतत्त्व-प्रकाशक

वस्तुतत्त्व-सङ्घोतक

वार्षिक मूल्य ५)

एक किरणका मूल्य ।)

नीतिविरोधध्वंसी लोकव्यवहारवर्तकः सम्यक् ।
परमागमस्य बीजं भुवनैकगुरुर्जयत्यनेकान्तः ॥

वर्ष ९ किरण १०	वीरसेवामन्दिर (समन्तभद्राश्रम), सरसावा, जिला सहारनपुर आश्विनशुक्ल, वीरनिर्वाण-संवत २४७४, विक्रम-संवत् २००५	अक्तूबर १९४८

मदीया द्रव्य-पूजा

(शार्दूलविक्रीडितम्)

(१)

नीरं कच्छप-मीन-भेक-कलितं, तज्जन्म-मृत्याकुलम्;
वत्सोच्छिष्टमयं पयश्च, कुसुमं घ्रातं सदा षट्पदैः ।
मिष्टान्नं च फलं च नाऽत्र घटितं यन्मक्षिकाऽस्पर्शितम्;
तत्किं देव ! समर्पयामि इति मच्चित्तं तु दोलायते ॥

(२)

एतच्चाऽऽहृदि वर्तते प्रभुवर ! क्षुत्तृड् विनाशाच्च ते
नार्थः कोऽपि हि विद्यते रसयुतै-रन्नादिपानैः सह ।
नो वांछा न विनोदभावजननं नष्टश्च रागोऽखिलः;
एवं त्वर्पण-व्यर्थता गतगदे, सद्भेषजाऽऽनर्थ्यवन् ॥

(३)

निःसारं प्रतिबुध्य रत्ननिवहं, नानाविधं भूषणम्
हृद्यं कान्तिसमन्वितं च वसनं सर्वं त्वया श्रीपते !
संत्यक्तं प्रमुदा विरागमतिना तत्तम् त्वदग्रेऽधुना
यद्याऽऽराध्य ! समर्पयामि भगवन् ! तद् धृष्टता मेऽखिला

(४)

तस्मान्न्यस्त-शिरौग्र-हस्त-युगलो भूत्वा विनम्रस्त्वहं,
भक्त्या त्वां प्रणमामि नाथमसक्त-ल्लोकैक-दीपं परम् ।
शक्त्या स्तोत्रपरो भवामि च मुदा दत्ताऽवधानः सदा,
एतन्मे तव द्रव्य-पूजनमहो ! मोहारि-संहारये ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समन्तभद्र-भारतीके कुछ नमूने

युक्त्यनुशासन

विशेष - सामान्य - विषक्त - भेद-
विधि-व्यवच्छेद-विधायि-वाक्यम् ।
अभेद-बुद्धेरविशिष्टता स्याद्
व्यावृत्तिबुद्धेश्च विशिष्टता ते ॥६०॥

'वाक्य (वस्तुतः) विशेष (विसदृश परिणाम) और सामान्य (सदृश परिणाम) को लिये हुये जो (द्रव्य-पर्यायकी अथवा द्रव्य-गुण-कर्मकी व्यक्तिरूप) भेद हैं उनके विधि और प्रतिषेध दोनोंका विधायक होता है। जैसे 'घट लाओ' यह वाक्य जिस प्रकार घटके लानेरूप विधिका विधायक (प्रतिपादक) है उसी प्रकार अघटके न लानेरूप प्रतिषेधका भी विधायक है, अन्यथा उसके विधानार्थ वाक्यान्तरके प्रयोगका प्रसंग आता है और उस वाक्यान्तरके भी तत्प्रतिषेधविधायी न होनेपर फिर दूसरे वाक्यके प्रयोगकी जरूरत उपस्थित होती है और इस तरह वाक्यान्तरके प्रयोगकी कहीं भी समाप्ति बन न सकनेसे अनवस्था दोषका प्रसंग आता है, जिससे कभी भी घटके लानेरूप विधिकी प्रतिपत्ति नहीं बन सकती। अतः जो वाक्य प्रधानभावसे विधिका प्रतिपादक है वह गौणरूपसे प्रतिषेधका भी प्रतिपादक है और जो मुख्यरूपसे प्रतिषेधका प्रतिपादक है वह गौणरूपसे विधिका भी प्रतिपादक है, ऐसा प्रतिपादन करना चाहिये।

(हे वीर जिन!) आपके यहाँ—आपके स्याद्वाद-शासनमें—(जिस प्रकार) अभेदबुद्धिसे (द्रव्यत्वादि व्यक्तिकी) अविशिष्टता (समानता) होती है (उसी प्रकार) व्यावृत्ति(भेद)बुद्धिसे विशिष्टताकी प्राप्ति होती है।'

सर्वान्तवत्तद्गुण-मुख्य-कल्पं
सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वाऽऽपदामन्तकरं निरन्तं
सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥६१॥

'(हे वीर भगवन्!) आपका तीर्थ-प्रवचनरूप शासन—अर्थात् परमागमवाक्य जिसके द्वारा संसार महासमुद्रको तिरा जाता है—सर्वान्तवान् है—सामान्य-विशेष, द्रव्य-पर्याय, विधि-निषेध, एक-अनेक, आदि अशेष धर्मोंको लिये हुये है—और गौण तथा मुख्यकी कल्पनाको साथमें लिये हुये है—एक धर्म मुख्य है तो दूसरा गौण है, इसीसे सुव्यवस्थित है, उसमें असंगतता अथवा विरोधके लिये कोई अवकाश नहीं है। जो शासन-वाक्य धर्मोंमें पारस्परिक अपेक्षाका प्रतिपादन नहीं करता—उन्हें सर्वथा निरपेक्ष बतलाता है वह सर्व धर्मोंसे शून्य है—उसमें किसी भी धर्मका अस्तित्व नहीं बन सकता और न उसकेद्वारा पदार्थ-व्यवस्था ही ठीक बैठ सकती है। अतः आपका ही यह शासनतीर्थ सर्व दुःखोंका अन्त करनेवाला है, यही निरन्त है—किसी भी मिथ्यादर्शनके द्वारा खंडनीय नहीं है—और यही सब प्राणियोंके अभ्युदय-का कारण तथा आत्माके पूर्ण अभ्युदय (विकास) का साधक है ऐसा सर्वोदयतीर्थ है।'

भावार्थः—आपका शासन अनेकान्तके प्रभावसे सकल दुर्नयों (परस्परनिरपेक्ष नयों) अथवा मिथ्या-दर्शनोंका अन्त (निरसन) करनेवाला है और ये दुर्नय अथवा सर्वथा एकान्तवादरूप मिथ्यादर्शन ही संसारमें अनेक शारीरिक तथा मानसिक दुःखरूप आपदाओंके कारण होते हैं, इसलिये इन दुर्नयरूप मिथ्यादर्शनोंका अन्त करनेवाला होनेसे आपका शासन समस्त आपदाओंका अन्त करनेवाला है, अर्थात् जो लोग आपके शासनतीर्थका आश्रय लेते हैं—उसे पूर्णतया अपनाते हैं—उनके मिथ्यादर्शनादि दूर होकर समस्त दुःख मिट जाते हैं। और वे अपना पूर्ण अभ्युदय—उत्कर्ष एवं विकास—सिद्ध करनेमें समर्थ हो जाते हैं।

कामं द्विषन्नप्युपपत्तिचक्षुः
समीक्ष्यतां ते समदृष्टिरिष्टम् ।
त्वयि ध्रुवं खण्डित-मान-शृङ्गो
भवत्यभद्रोऽपि समन्तभद्रः ॥६२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(हे वीर जिन !) आपके इष्ट—शासनसे यथेष्ट अथवा भरपेट द्वेष रखनेवाला मनुष्य भी, यदि समदृष्टि (मध्यस्थवृत्ति) हुआ; उपपत्ति-चक्षुसे—मात्सर्यके त्यागपूर्वक युक्तिसङ्गत समाधानकी दृष्टिसे—आपके इष्टका—शासनका—अवलोकन और परीक्षण करता है तो अवश्य ही उसका मानशृङ्ग खंडित होजाता है—और वह अभद्र अथवा मिथ्यादृष्टि होता हुआ भी सब ओरसे भद्ररूप एवं सम्यग्दृष्टि बन जाता है। अथवा यों कहिये कि आपके शासनतीर्थका उपासक और अनुयायी हो जाता है।'

न रागान्नः स्तोत्रं भवति भव-पाश-च्छिदि मुनौ
न चाऽन्येषु द्वेषादपगुण-कथाऽभ्यास-खलता।
किमु न्यायाऽन्याय-प्रकृत-गुणदोषज्ञ-मनसां
हिताऽन्वेषोपायस्तव गुण-कथा-सङ्ग-गदितः ॥६३॥

'(हे वीर भगवन् !) हमारा यह स्तोत्र आप जैसे भव-पाश-छेदक मुनिके प्रति रागभावसे नहीं है, न हो सकता है;—। क्योंकि इधर तो हम परीक्षा-प्रधानी हैं और उधर आपने भव-पाशको छेदकर संसारसे अपना सम्बन्ध ही अलग कर लिया है; ऐसी हालतमें आपके व्यक्तित्वके प्रति हमारा राग-भाव इस स्तोत्रकी उत्पत्तिका कोई कारण नहीं हो सकता। दूसरोंके प्रति द्वेषभावसे भी इस स्तोत्रका कोई सम्बन्ध नहीं है;—क्योंकि एकान्तवादियोंके साथ अर्थात् उनके व्यक्तित्वके प्रति हमारा कोई द्वेष नहीं है—हम तो दुर्गुणोंकी कथाके अभ्यासको 'खलता' समझते हैं और उस प्रकारका अभ्यास न होनेसे वह 'खलता' हममें नहीं है, और इसलिये दूसरोंके प्रति द्वेषभाव भी इस स्तोत्रकी उत्पत्तिका कारण नहीं हो सकता। तब फिर इसका हेतु अथवा उद्देश ? उद्देश यही है कि जो लोग न्याय-अन्यायको पहचानना चाहते हैं और प्रकृत पदार्थके गुण-दोषों को जानने-की जिनकी इच्छा है उनके लिये यह स्तोत्र '<u>हितान्वेषणके उपायस्वरूप</u>' आपकी गुणकथाके साथ कहा गया है। इसके सिवाय जिस भव-पाशको आपने छेद दिया है उसे छेदना—अपने और दूसरोंके संसारबन्धनोंको तोड़ना—हमें भी इष्ट है और इस लिये यह प्रयोजन भी इस स्तोत्रकी उत्पत्तिका एक हेतु है। इस तरह यह स्तोत्र श्रद्धा और गुणज्ञताकी अभिव्यक्तिके साथ लोक-हितकी दृष्टिको लिये हुये है।'

इति स्तुत्यः स्तुत्यैस्त्रिदश-मुनि-मुख्यैः प्रणिहितैः
स्तुतः शक्त्या श्रेयःपदमधिगतस्त्वं जिन ! मया।
महावीरो वीरो दुरित-पर-सेनाऽभिविजये
विधेया मे भक्तिं पथि भवत एवाऽप्रतिनिधौ ॥६४

'हे वीर जिनेन्द्र! आप चूँकि दुरितपरकी—मोहादिरूप कर्मशत्रुकी—सेनाको पूर्णरूपसे पराजित करनेमें वीर हैं—वीर्यातिशयको प्राप्त हैं—निःश्रेयस पदको अधिगत (स्वाधीन) करनेसे महावीर हैं और देवेन्द्रों तथा मुनीन्द्रों (गणधर देवादिकों) जैसे स्वयं स्तुत्योंके द्वारा एकाग्रमनसे स्तुत्य हैं, इसीसे मेरे—मुझ परीक्षाप्रधानीके द्वारा—शक्तिके अनुरूप स्तुति किये गये हैं। अतः अपने ही मार्गमें—अपने द्वारा अनुष्ठित एवं प्रतिपादित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप मोक्षमार्गमें, जो प्रतिनिधिरहित है—अन्ययोग-व्यवच्छेदरूपसे निर्णीत है अर्थात् दूसरा कोई भी मार्ग जिसके जोड़का अथवा जिसके स्थानपर प्रतिष्ठित होनेके योग्य नहीं है—मेरी भक्तिको सविशेष रूपसे चरितार्थ करो—आपके मार्गकी अमोघता और उससे अभिमत फलकी सिद्धिको देखकर मेरा अनुराग (भक्तिभाव) उसके प्रति उत्तरोत्तर बढ़े, जिससे मैं भी उसी मार्गकी आराधना-साधना करता हुआ कर्म शत्रुओंकी सेनाको जीतनेमें समर्थ होऊँ और निःश्रेयस (मोक्ष) पदको प्राप्त करके सफल मनोरथ हो सकूँ। क्योंकि सच्ची सविवेक-भक्ति ही मार्गका अनुसरण करनेमें परम सहायक होती है और जिसकी स्तुति की जाती है उसके मार्गका अनुसरण करना अथवा उसके अनूकूल चलना ही स्तुतिको सार्थक करता है, इसीसे स्तोत्रके अन्तमें ऐसी फलप्राप्तिकी प्रार्थना अथवा भावना की गई है।'

इति युक्त्यनुशासनम्।

जुगलकिशोर मुख्तार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीरकी मूर्ति और लङ्गोटी

(लेखक—श्री'लोकपाल')

एक दिन मैं बाबू रघुवीरकिशोरजीके साथ वृन्दावन गया। वहाँ उन्होंने रास्तेमें बिड़लामन्दिर दिखलाया और मन्दिरमें चारों तरफ देखते भालते तथा इधर उधर घूमते हुए एक जगह एक जैनमूर्ति श्रीवर्द्धमान महावीर स्वामीकी बनी हुई दिखलायी। और मेरा ध्यान विशेषतौरसे एक बातकी तरफ आकर्षित किया कि मूर्ति लङ्गोटी पहनी हुई बनाई गई है। मुझे दुःख हुआ। खेद है कि ये लोग दिगंबरत्वका महत्व नहीं समझ सके और यह इन लोगोंकी मानसिक कमजोरी तथा विकारका सूचक है जिसने उलटी बातें सुनते और वर्तते रहनेके कारण जड़ पकड़ ली है। सच्ची बात जाननेकी कोशिश कौन कहे उसे सुनना भी गवारा करने या बरदाश्त करनेको तैयार नहीं। ऐसा वातावरण आज भारतमें पैदा कर दिया गया है कि लोग बगैर सोचे-समझे-विचारे ही यों ही किसी बातपर निरे बेवकूफ़ और भौंदू-सा हँस देनेमें ही अपनी या अपने धर्मकी बहादुरी समझते हैं। इसे हम अज्ञान न कहें तो और क्या कहें ? आज कॉलेजोंमें जाइए—जैन लड़के अधिकतर जैनमन्दिरोंमें जानेमें शर्माते हैं और नहीं जाते हैं, केवल इस लिए कि दस आदमी किसी लड़केको यह कहकर लजवा देते हैं कि वह "नङ्गे" देवताओंकी पूजा करता है। दस आदमी मिलकर किसी भी बड़ेसे बड़े विद्वान या व्यक्तिको हँसकर और ताली पीटकर बेवकूफ़ बना देते हैं या बना सकते हैं। यही तरीका अबतक खासतौरसे जैन-धर्म या जैनधर्मावलम्बियोंके साथ वर्ता जाता रहा है। जब तर्क और बुद्धिसे कोई हार जाता है तब इन्हीं ओछे तौर-तरीकोंको अपनाता है। खैर, ये सब तो पुरानी बातें हो गईं। अब तो मिलने-मिलानेका समय है और सभी एक दूसरेसे मिलना या एक दूसरेकी बातोंको समझनेकी चेष्टा करने लगे हैं। यह अच्छा लक्षण है। देखें, भारत कबतक मानसिक पतनके खड्डेसे ऊपर उठता है।

जबतक एक पतली-सी भी लङ्गोटी किसीके लिए रखनी आवश्यक रहेगी तबतक वह पूर्णरूपसे निर्विकार हो ही नहीं सकता। और अधिक कपड़ोंकी कौन कहे केवल-मात्र एक लङ्गोटीका भी रखना ही यह साबित करता है कि लङ्गोटी पहननेवाला व्यक्ति पूर्णरूपसे निर्विकार नहीं है। इसके अतिरिक्त भी लङ्गोटी जबतक मौजूद है वह निर्विकार या एकदम परम निश्चिन्त हो ही कैसे सकता है ? लङ्गोटी गन्दी होगी मैली होगी—बदबू करेगी—उसे साफ करना या साफ रखना एक फ़िकर या चिन्ता तो यही हुई। फट जाय तो दूसरीका प्रबन्ध करना—इत्यादि। यह तो हुई सांसारिक बात जो हर आदमी यदि समझना चाहे तो स्वयं समझ सकता है—यदि ठीक मानसिक स्थितिमें हो तो। आगे तत्वतः देखा जाय तो जिसने संसारका सब कुछ जान लिया उसके लिए क्या छिपा रह जाता है—वह तो सब कुछ एकदम खुला हुआ यों ही प्रत्यक्ष देखता या जानता है। जब किसीको समता प्राप्त हो जाय, सबमें वह एक ही शुद्ध आत्माका दर्शन करने लगे या उसको देखने लगे जो स्वयं उसके शरीरके अन्दर है—या वह सभीको अपने समान केवल आत्मारूप ही देखने लगे तो फिर वहाँ पर्देकी क्या जरूरत रह जाती है ? परमवीतरागी, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी और पूर्णतः शक्ति-सम्पन्न महात्मा किसके लिये लङ्गोटी लगाए ? उसे न अपने लिये ज़रूरत रहती है और न दूसरोंकी ख़ातिर। वास्तवमें सविवेक दिगम्बरत्वका बड़ा महत्व है जो साधारणतः सभीके दिमागमें घुसना सम्भव नहीं। जिस समय इस विषयकी महत्ता लोगोंको ज्ञात होजाय उसी समय समझना चाहिएकि अब देश या संसारके उत्थानमें देर नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाँधीजीकी जैन-धर्मको देन

(श्री पं० सुखलालजी)

धर्मके दो रूप होते हैं। सम्प्रदाय कोई भी हो उसका धर्म बाहरी और भीतरी दो रूपों में चलता रहता है। बाह्य रूपको हम 'धर्म कलेवर' कहें तो भीतरी रूप को 'धर्म चेतना' कहना चाहिये।

धर्म का प्रारम्भ, विकास और प्रचार मनुष्य जाति में ही हुआ है। मनुष्य खुद न केवल चेतन है और न केवल देह। वह जैसे सचेतन देहरूप है वैसे ही उसका धर्म भी चेतनायुक्त कलेवर रूप होता है। चेतना की गति. प्रगति और अवगति कलेवर के सहारे के बिना असम्भव है। धर्म चेतना भी बाहरी आचार रीति-रस्म, रूढ़ि-प्रणाली आदि कलेवरके द्वारा ही गति, प्रगति और अवगति को प्राप्त होती रहती है।

धर्म जितना पुराना उतने ही उसके कलेवर नाना-रूपसे अधिकाधिक बदलते जाते हैं। अगर कोई धर्म जीवित हो तो उसका अर्थ यह भी है कि उसके कैसे भी भद्दे या अच्छे कलेवरमें थोड़ा-बहुत चेतनाका अंश किसी न किसी रूपमें मौजूद है। निष्प्राण देह सड़-गड़कर अस्तित्व गँवा बैठती है। चेतनाहीन सम्प्रदाय कलेवरकी भी वही गति होती है।

जैन परम्पराका प्राचीन नाम-रूप कुछ भी क्यों न रहा हो; पर उस समयसे अभीतक जीवित है जब जब उसका कलेवर दिखावटी और रोगग्रस्त हुआ है तब तब उसकी धर्म चेतनाका किसी व्यक्तिमें विशेषरूपसे स्पन्दन प्रकट हुआ है। पार्श्वनाथके बाद महावीरमें स्पन्दन तीव्ररूपसे प्रकट हुआ है जिसका इतिहास साक्षी है।

धर्मचेतनाके मुख्य दो लक्षण हैं जो सभी धर्म-सम्प्रदायोंमें व्यक्त होते हैं। भले ही उस आविर्भावमें तारतम्य हो। पहला लक्षण है, *'अन्यका भला करना'* और दूसरा लक्षण है *'अन्यका बुरा न करना'*। ये विधि-निषेधरूप या हकार नकाररूप साथ ही साथ चलते हैं। एकके सिवाय दूसरेका सम्भव नहीं। जैसे-जैसे धर्मचेतनाका विशेष और उत्कट स्पन्दन वैसे-वैसे ये दोनों विधि-निषेधरूप भी अधिकाधिक सक्रिय होते हैं। जैन-परम्पराकी ऐतिहासिक भूमिका को हम देखते हैं तो मालूम पड़ता है कि उसके इतिहास कालसे ही धर्मचेतनाके उक्त दोनों लक्षण साधारणरूपमें न पाये जाकर असाधारण और व्यापकरूपमें ही पाये जाते हैं। जैन-परम्पराका ऐतिहासिक पुरावा कहता है कि सबका अर्थात् प्राणी-मात्रका, जिसमें मनुष्य, पशु-पक्षीके अलावा सूक्ष्म कीट जन्तु तकका समावेश हो जाता है—सब तरहसे भला करो। इसी तरह प्राणीमात्रको किसी भी प्रकार-से तकलीफ न दो। यह पुरावा कहता है कि जैन परम्परागत धर्मचेतनाकी वह भूमिका प्राथमिक नहीं है। मनुष्यजातिके द्वारा धर्मचेतनाका जो क्रमिक विकास हुआ है उसका परिपक्व विचारका श्रेय ऐतिहासिक दृष्टिसे भगवान् महावीरको तो अवश्य है ही।

कोई भी सत्पुरुषार्थी और सूक्ष्मदर्शी धर्मपुरुष अपने जीवनमें धर्मचेतनाका कितना ही स्पंदन क्यों न करे पर वह प्रकट होता है सामयिक और देशकालिक आवश्यकताओं की पूर्तिके द्वारा। हम इतिहास से जानते हैं कि महावीरने सबका भला करना और किसीको तकलीफ न देना इन दो धर्मचेतनाके रूपों को अपने जीवनमें ठीक-ठीक प्रकट किया। प्रकटी-करण सामयिक जरूरतोंके अनुसार मर्यादित रहा। मनुष्यजातिकी उस समय और उस देशकी निर्बलता, जातिभेदमें, छूआछूतमें, स्त्री की लाचारीमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और यज्ञीयहिंसामें थी। महावीरने इन्हीं निर्बलताओं का सामना किया। क्योंकि उनकी धर्मचेतना अपने आसपास प्रवृत्त अन्यायको सह न सकती थी। इसी करुणावृत्तिने उन्हें अपरिग्रही बनाया। अपरिग्रह भी ऐसा कि जिसमें न घर-बार और न वस्त्र-पात्र। इसी करुणावृत्तिने उन्हें दलित-पतितका उद्धार करनेको प्रेरित किया। यह तो हुआ महावीर की धर्मचेतनाका स्पंदन।

पर उनके बाद यह स्पंदन जरूर मन्द हुआ और धर्मचेतनाका पोषक धर्म कलेवर बहुत बढ़ने लगा, बढ़ते-बढ़ते उस कलेवरका कद और वजन इतना बढ़ा कि कलेवर की पुष्टी और वृद्धिके साथ ही चेतना का स्पंदन मन्द होने लगा। जैसे पानी सूखते ही या कम होते ही नीचे की मिट्टीमें दरारें पड़ती हैं और मिट्टी एक रूप न रह कर विभक्त हो जाती है वैसे ही जैन परम्पराका धर्मकलेवर भी अनेक टुकड़ोंमें विभक्त हुआ और वे टुकड़े चेतनास्पंदनके मिथ्या अभिमानसे प्रेरित होकर आपसमें ही लड़ने-झगड़ने लगे। जो धर्मचेतनाके स्पंदनका मुख्य काम था वह गौण होगया और धर्मचेतना की रक्षाके नामपर वे मुख्यतया गुजारा करने लगे।

धर्म-कलेवरके फिरकोंमें धर्मचेतना कम होते ही आसपासके विरोधी बलोंने उनके ऊपर बुरा असर डाला। सभी फिरके मुख्य उद्देश्यके बारेमें इतने निर्बल साबित हुए कि कोई अपने पूज्य पुरुष महावीर की प्रवृत्तिको योग्य रूपमें आगे न बढ़ा सके। स्त्री-उद्धार की बात करते हुए भी वे स्त्रीके अबलापनके पोषक ही रहे। उच्च-नीच भाव और छूआछूतके दूर करने की बात करते हुए भी वे जातिवादी ब्राह्मण परम्पराके प्रभावसे बच न सके और व्यवहार तथा धर्मक्षेत्रमें उच्च-नीच भाव और छूआछूतपनेके शिकार बन गये। यज्ञीयहिंसाके प्रभावसे वे जरूर बच गये और पशु-पक्षी की रक्षामें उन्होंने हाथ ठीक ठीक बटाया; पर वे अपरिग्रहके प्राण मूर्छात्यागको गँवा बैठे। देखनेमें तो सभी फिरके अपरिग्रही मालूम होते रहे; पर अपरिग्रहका प्राण उनमें कमसे कम रहा। इसीलिये सभी फिरकोंके त्यागी अपरिग्रह व्रत की दुहाई देकर नंगे पाँवसे चलते देखे जाते हैं लूँचन रूपसे बाल तक हाथसे खींच डालते हैं, निर्वसन भाव भी धारण करते देखे जाते हैं, सूक्ष्म-जन्तु की रक्षाके निमित्त मुँहपर कपड़ा तक रख लेते हैं, पर वे अपरिग्रहके पालनके लिये अनिवार्य रूपसे आवश्यक ऐसा स्वावलम्बी जीवन करीब-करीब गँवा बैठे हैं। उन्हें अपरिग्रहका पालन गृहस्थों की मदद के सिवाय सम्भव नहीं दीखता। फलतः वे अधिकाधिक पर-परिश्रमावलम्बी होगये हैं।

बेशक, पिछले ढाई हजार वर्षोंमें देशके विभिन्न भागोंमें ऐसे इने-गिने अनागार त्यागी और सागार गृहस्थ अवश्य हुए हैं जिन्होंने जैन परम्परा की मूर्छित-सी धर्मचेतनामें स्पंदनके प्राण फूँके। पर एक तो वह स्पंदन साम्प्रदायिक ढङ्गका था जैसा कि अन्य सभी सम्प्रदायोंमें हुआ है, और दूसरे वह स्पंदन ऐसी कोई दृढ़ नींवपर न था जिससे चिरकाल तक टिक सके। इसलिये बीच-बीचमें प्रकट हुए धर्मचेतनाके स्पंदन अर्थात् प्रभावनाकार्य सतत चालू रह न सके।

पिछली शताब्दीमें तो जैन समाजके त्यागी और गृहस्थ दोनोंकी मनोदशा विलक्षण-सी होगई थी वे परम्पराप्राप्त सत्य, अहिंसा और अपरिग्रहके आदर्श संस्कार की महिमाको छोड़ भी न सके थे और जीवनपर्यन्तमें वे हिंसा, असत्य और परिग्रहके संस्कारों का ही समर्थन करते जाते थे। ऐसा माना जाने लगा था कि कुटुम्ब, समाज, ग्राम, राष्ट्र आदिसे सन्बन्ध रखने वाली प्रवृत्तियाँ सांसारिक हैं, दुनियावी हैं, अव्यवहारिक हैं। इसलिये ऐसी आर्थिक औद्योगिक और राजकीय प्रवृत्तियोंमें न तो सत्य साथ दे सकता है, न अहिंसा काम कर सकती है और न अपरिग्रहव्रत ही कार्यसाधक बन सकता है। ये धर्म सिद्धान्त सच्चे हैं सही, पर इनका शुद्ध पालन दुनिया के बीच संभव नहीं। इसके लिये तो एकान्त वनवास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और संसार त्याग ही चाहिये। इस विचारने अनगार त्यागियोंके मनपर भी ऐसा प्रभाव जमाया था कि वे रात दिन सत्य, अहिंसा और अपरिग्रहका उपदेश करते हुए भी दुनियावी-जीवनमें उन उपदेशों के सच्चे पालनका कोई रास्ता दिखा न सकते थे। वे थक कर यही कहते थे कि अगर सच्चा धर्म पालन करना हो तो तुम लोग घर छोड़ो, कुटुम्ब समाज और राष्ट्रकी जवाबदेही छोड़ो, ऐसी जवाबदेही और सत्य-अहिंसा अपरिग्रहका शुद्ध पालन दोनों एक साथ सम्भव नहीं। ऐसी मनोदशाके कारण त्यागी गण देखनेमें अवश्य अनगार था, पर उसका जीवन तत्त्वदृष्टिसे किसी भी प्रकार अगारी गृहस्थों की अपेक्षा विशेष उन्नत या विशेष शुद्ध बनने न पाया था। इसलिये जैन समाज की स्थिति ऐसी होगई थी कि हजारोंकी संख्यामें साधु-साध्वियोंके सतत होते रहनेपर भी समाजके उत्थानका कोई सच्चा काम होने न पाता था और अनुयायी गृहस्थवर्ग तो साधु-साध्वियोंके भरोसे रहनेका इतना आदि हो गया था कि वह हरएक बातमें निकम्मी प्रथाका त्याग सुधार, परिवर्तन वगैरह करनेमें अपनी बुद्धि और साहस ही गँवा बैठा था। त्यागीवर्ग कहता था कि हम क्या करें? यह काम तो गृहस्थोंका है। गृहस्थ कहते थे कि हमारे सिरमौर गुरु हैं। वे महावीरके प्रतिनिधि हैं, शास्त्रज्ञ हैं, वे हमसे अधिक जान सकते हैं, उनके सुझाव और उनकी सम्मतिके बिना हम कर ही क्या सकते हैं? गृहस्थोंका असर ही क्या पड़ेगा? साधुओंके कथनको सब लोग मान सकते हैं इत्यादि। इस तरह अन्य धर्म समाजों की तरह जैन समाजकी नैया भी हर एक क्षेत्रमें उलझनोंकी भँवरमें फँसी थी।

सारे राष्ट्रपर पिछली सहस्राब्दीने जो आफतें ढाई थीं और पश्चिमके सम्पर्कके बाद विदेशी राज्यने पिछली दो शताब्दियोंमें गुलामी, शोषण और आपसी फूटकी जो आफत बढ़ाई थी उसका शिकार तो जैन समाज शत प्रतिशत था ही, पर उसके अलावा जैन समाजके अपने निजी भी प्रश्न थे। जो उलझनोंसे पूर्ण थे। आपसमें फिरकाबन्दी, धर्मके निमित्त अधर्म पोषक झगड़े, निवृत्तिके नामपर निष्क्रियता और ऐदीपन की बाढ़, नई पीढ़ीमें पुरानी चेतनाका विरोध और नई चेतनाका अवरोध, सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह जैसे शाश्वत मूल्य वाले सिद्धान्तोंके प्रति सबकी देखादेखी बढ़ती हुई अश्रद्धा ये जैन समाजकी समस्याएँ थीं।

इस अन्धकार प्रधान रात्रिमें अफ्रिकासे एक कर्मवीरकी हलचलने लोगोंकी आँखें खोली। वही कर्मवीर फिर अपनी जन्म-भूमि भारत भूमिमें पीछे लौटा। आते ही सत्य, अहिंसा और अपरिग्रहकी निर्भय और गगनभेदी वाणी शान्त-स्वरसे और जीवन-व्यवहारसे सुनाने लगा। पहले तो जैन समाज अपनी संस्कार-च्युतिके कारण चौंका। उसे भय मालूम हुआ कि दुनियाकी प्रवृत्ति या सांसारिक राजकीय प्रवृत्तिके साथ सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह का मेल कैसे बैठ सकता है? ऐसा हो तो फिर त्याग मार्ग अनगार धर्म जो हजारों वर्षसे चला आता है वह नष्ट ही हो जायगा। पर जैसे-जैसे कर्मवीर गाँधी एकके बाद एक नये-नये सामाजिक और राजकीय क्षेत्रको सर करते गये और देशके उच्चसे उच्च मस्तिष्क भी उनके सामने झुकने लगे। कवीन्द्र रवीन्द्र, लाला लाजपतराय, देशबन्धुदास, मोतीलाल नेहरू आदि मुख्य राष्ट्रीय पुरुषोंने गाँधीजीका नेतृत्व मान लिया। वैसे-वैसे जैन समाजकी भी सुषुप्त और मुर्च्छितसी धर्मचेतनामें स्पन्दन शुरू हुआ। स्पन्दनकी यह लहर क्रमशः ऐसी बढ़ती और फैलती गई कि जिसने ३५ वर्षके पहलेकी जैन समाजकी काया ही पलट दी। जिसने ३५ वर्षके पहलेकी जैन समाजकी बाहरी और भीतरी दशा आँखों देखी है और जिसने पिछले ३५ वर्षोंमें गाँधीजीके कारण जैन समाजमें सत्वर प्रकट होने वाले सात्विक धर्मस्पन्दनोंको देखा है वह यह बिना कहे नहीं रह सकता कि जैन समाजकी धर्म-चेतना—जो गाँधीजीकी देन है—वह इतिहास कालमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभूतपूर्व है। अब हम संक्षेपमें यह देखें कि गाँधीजी की यह देन किस रूपमें है।

जैन समाजमें जो सत्य और अहिंसाकी सार्वत्रिक कार्यक्षमताके बारेमें अविश्वासकी जड़ जमी थी, गाँधीजीने देशमें आते ही सबसे प्रथम उसपर कुठाराघात किया। जैन लोगोंके दिलमें सत्य और अहिंसाके प्रति जन्मसिद्ध आदर तो था ही। वे सिर्फ प्रयोग करना जानते न थे और न कोई उन्हें प्रयोगके द्वारा उन सिद्धान्तोंकी शक्ति दिखाने वाला था। गाँधीजीके अहिंसा और सत्यके सफल प्रयोगोंने और किसी समाजकी अपने सबसे पहले जैन समाजका ध्यान खींचा। अनेक बूढ़े तरुण और सभ्य शुरूमें कुतूहलवश और पीछे लगनीसे गाँधीजीके आसपास इकट्ठे होने लगे। जैसे जैसे गाँधीजीके अहिंसा और सत्यके प्रयोग अधिकाधिक समाज और राष्ट्रव्यापी होते गये वैसे वैसे जैन समाजको विरासतमें मिली अहिंसा-वृत्तिपर अधिकाधिक भरोसा होने लगा और फिर तो वह उन्नत मस्तक और प्रसन्नवदनसे कहने लगा कि 'अहिंसा परमो धर्मः' यह जो जैन परम्पराका मुद्रालेख है उसीकी यह विजय है। जैन परम्परा स्त्रीकी समानता और मुक्तिका दावा[१] तो करती ही आरही थी; पर व्यवहारमें उसे उसके अबलापनके सिवाय कुछ नजर आता न था। उसने मान लिया था कि त्यक्ता, विधवा और लाचार कुमारीके लिये एकमात्र बलप्रद मुक्तिमार्ग साध्वी बननेका है। पर गाँधीजीके जादूने यह साबित कर दिया कि अगर स्त्री किसी अपेक्षासे अबला है तो पुरुष भी अबल ही है। अगर पुरुषको सबल मान लिया जाय तो स्त्रीके अबला रहते वह सबल बन नहीं सकता। कई अंशोंमें तो पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीका बल बहुत है। यह बात गाँधीजीने केवल दलीलोंसे समझाई न थी, पर उनके जादूसे स्त्री शक्ति इतनी अधिक प्रकट हुई कि अब तो पुरुष उसे अबला कहनेमें सकुचाने लगा। जैन स्त्रियोंके दिलमें भी ऐसा कुछ चमत्कारिक परिवर्तन हुआ कि वे अब अपनेको शक्तिशाली समझकर जबावदेही के छोटे मोटे अनेक काम करने लगीं और आमतौरसे जैनसमाजमें यह माना जाने लगा कि जो स्त्री ऐहिक बन्धनोंसे मुक्ति पानेमें असमर्थ है वह साध्वी बनकर भी पारलौकिक मुक्ति पा नहीं सकती। इस मान्यासे जैन बहनोंके सूखे और पीले चेहरेपर सुर्खी आ गई और वह देशके कोने कोनेमें जवाबदेहीके अनेक काम सफलतापूर्वक करने लगीं। अब उन्हें त्यक्तापन, विधवापन या लाचार कुमारीपनका कोई दुःख नहीं सताता। यह स्त्रीशक्तिका कायापलट है। यों तो जैन लोग सिद्धान्तरूपसे जाति भेद और छुआछूतको बिल्कुल मानते न थे और इसीमें अपनी परम्पराका गौरव भी समझते थे; पर इस सिद्धान्तको व्यापकतौरसे वे अमलमें लानेमें असमर्थ थे। गाँधीजीकी प्रायोगिक अंजनशलाकाने जैन समझदारोंके नेत्र खोल दिये और उनमें साहस भर दिया फिर तो वे हरिजन या अन्य दलितवर्गको समान भावसे अपनाने लगे। अनेक बूढ़े और युवक स्त्री-पुरुषोंका खास एकवर्ग देशभरके जैन समाजमें ऐसा तैयार हो गया है कि वह अब रूढ़िचुस्त मानसकी बिल्कुल परवाह बिना किये हरिजन और दलितवर्गकी सेवामें या तो पड़ गया है, या उसके लिये अधिकाधिक सहानुभूति पूर्वक सहायता करता है।

जैनसमाजमें महिमा एकमात्र त्यागकी रही, पर कोई त्यागी निवृत्ति और प्रवृत्तिका सुमेल साध न सकता था। यह प्रवृत्तिमात्रको निवृत्ति विरोधी समझ कर अनिवार्यरूपसे आवश्यक ऐसी प्रवृत्तिका बोझ भी दूसरोंके कन्धे डालकर निवृत्तिका सन्तोष अनुभव करता था। गाँधीजीके जीवनने दिया कि निवृत्ति और प्रवृत्ति वस्तुतः परस्पर विरुद्ध नहीं है। जरूरत है तो दोनोंके रहस्य पानेकी। समय प्रवृत्तिकी माँग कर रहा था और निवृत्तिकी भी। सुमेलके बिना दोनों निरर्थक

१ यह श्वेताम्बर परम्पराकी दृष्टिसे है। दिगम्बर-परम्परा स्त्री-मुक्ति नहीं मानती। —सम्पादक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही नहीं बल्कि समाज और राष्ट्रघातक सिद्ध हो रहे थे। गाँधीजीके जीवनमें निवृत्ति और प्रवृत्तिका ऐसा सुमेल जैनसमाजने देखा जैसा गुलाबके फूल और सुवासमें। फिर तो मात्र गृहस्थोंकी ही नहीं, बल्कि त्यागी अनगारों तककी आँखें खुल गईं। उन्हें अब जैन शास्त्रोंका असली मर्म दिखाई दिया या वे शास्त्रोंको नये अर्थमें नये सिरेसे देखने लगे। कई त्यागी अपना भिक्षुवेष रखकर भी या छोड़कर भी निवृत्ति-प्रवृत्तिके गङ्गा-यमुना संगममें स्नान करने आये और वे अब भिन्न-भिन्न सेवाक्षेत्रोंमें पड़कर अपना अनगारपना सच्चे अर्थमें साबित कर रहे हैं। जैन गृहस्थकी मनोदशामें भी निष्क्रिय निवृत्तिका जो घुन लगा था वह हटा और अनेक बूढ़े जवान निवृत्ति प्रिय जैन स्त्री-पुरुष निष्काम प्रवृत्तिका क्षेत्र पसन्द कर अपनी निवृत्ति-प्रियताको सफल कर रहे हैं। पहले भिक्षु-भिक्षुणियोंके लिये एक ही रास्ता था कि या तो वे वेष धारण करनेके बाद निष्क्रिय बनकर दूसरोंकी सेवा लेते रहें, या दूसरोंकी सेवा करना चाहें तो वे वेष छोड़कर अप्रष्ठित बनकर समाजबाह्य हो जायें। गाँधीजीके नये जीवनके नये अर्थने निष्प्राणसे त्यागी वर्गमें भी धर्मचेतनाका प्राण स्पन्दन किया। अब उसे न तो जरूरत ही रही भिक्षुवेष फेंक देनेकी और न डर रहा अप्रतिष्ठितरूपसे समाजबाह्य होनेका। अब निष्काम सेवाप्रिय जैन भिक्षुगणके लिए गाँधीजीके जीवनने ऐसा विशाल कार्य-प्रदेश चुन दिया है, जिसमें कोई भी त्यागी निर्दम्भ भावसे त्यागका आस्वाद लेता हुआ समाज और राष्ट्रके लिए आदर्श बन सकता है।

जैनपरम्पराको अपने तत्वज्ञानके अनेकान्त सिद्धान्तका बहुत बड़ा गर्व था। वह समझती थी कि ऐसा सिद्धान्त अन्य किसी धर्म परम्पराको नसीब नहीं है; पर खुद जैन परम्परा उस सिद्धान्तका सर्व लोक हितकारक रूपसे प्रयोग करना तो दूर रहा, पर अपने हितमें भी उसका प्रयोग करना जानती न थी। वह जानती थी इतना ही कि उस वादके नाम पर भङ्गजाल कैसे किया जा सकता है और विवादमें विजय कैसे पाया जा सकता है? अनेकान्तवादके हिमायती क्या गृहस्थ क्या त्यागी सभी फिरकेबन्दी और गच्छ-गणके ऐकान्तिक कदाग्रह और झगड़ेमें फँसे थे। उन्हें यह पता ही न था कि अनेकान्तका यथार्थ प्रयोग समाज और राष्ट्र की सब प्रवृत्तियोंमें कैसे सफलतापूर्वक किया जा सकता है? गाँधीजी तख्तेपर आये और कुटुम्ब, समाज, राष्ट्रकी सब प्रवृत्तियोंमें अनेकान्तदृष्टिका ऐसा सजीव और सफल प्रयोग करने लगे कि जिससे आकृष्ट होकर समझदार जैनवर्ग यह अन्तःकरणसे महसूस करने लगा कि भङ्गजाल और वादविजयमें तो अनेकान्तका कलेवर ही है। उसकी जान नहीं। जान तो व्यवहारके सब क्षेत्रोंमें अनेकान्तदृष्टिका प्रयोग करके विरोधी दिखाई देने वाले बलोंका संघर्ष मिटानेमें ही है।

जैन परम्परामें विजय सेठ और विजया सेठानी इस दम्पती युगलके ब्रह्मचर्यकी बात है। जिसमें दोनों का साहचर्य और सहजीवन होते हुए भी शुद्ध ब्रह्मचर्य पालनका भाव है। इसी तरह स्थूलिभद्र मुनिके ब्रह्मचर्य की भी कहानी है जिसमें एक मुनिने अपनी पूर्व परिचित वेश्याके सहवासमें रह कर भी विशुद्ध ब्रह्मचर्य पालन किया है। अभी तक ऐसी कहानियाँ लोकोत्तर समझी जाती रहीं। सामान्य जनता यही समझती रही कि कोई दम्पती या स्त्री-पुरुष साथ रह कर विशुद्ध ब्रह्मचर्य पालन करे तो वह दैवी चमत्कार जैसा है। पर गाँधीजीके ब्रह्मचर्यवासने इस अति कठिन और लोकोत्तर समझी जाने वाली बातको प्रयत्न साध्य पर इतनी लोकगम्य साबित कर दिया कि आज अनेक दम्पती और स्त्री-पुरुष साथ रह कर विशुद्ध ब्रह्मचर्य पालन करनेका निर्दम्भ प्रयत्न करते हैं। जैन समाजमें भी ऐसे अनेक युगल मौजूद हैं। अब उन्हें कोई स्थूलिभद्र की कोटिमें नहीं गिनता। हालाँकि उनका ब्रह्मचर्य-पुरुषार्थ वैसा ही है। रात्रि-भोजनत्याग और उपभोग-परिभोग परिमाण तथा उपवास, आयंबिल जैसे व्रत-नियम नये युगमें केवल उपहासकी दृष्टिसे देखे जाने लगे थे और श्रद्धालु लोग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन व्रतोंका आचरण करते हुए भी कोई तेजस्विता प्रकट न कर सकते थे। उन लोगोंका व्रत-पालन केवल रूढ़िधर्म-सा दीखता था। मानों उनमें भावप्राण रहा ही न हो। गाँधीजीने इन्हीं व्रतोंमें ऐसा प्राण फूँका कि आज कोई इनके मखौलका साहस नहीं कर सकता। गाँधीजीके उपवासके प्रति दुनिया-भर का आदर है। उनके रात्रिभोजनत्याग और इने-गिने खाद्य पेयके नियमको आरोग्य और सुभीते की दृष्टि से भी लोग उपादेय समझते हैं। हम इस तरह की अनेक बातें देख सकते हैं जो परम्परासे जैन समाज में चिरकालसे चली आती रहनेपर भी तेजोहीन-सी दीखती थीं; पर अब गाँधीजीके जीवनने उन्हें आद-रास्पद बना दिया है।

जैनपरम्पराके एक नहीं अनेक सुसंस्कार जो सुप्त या मूर्छित पड़े थे उनको गाँधोजी की धर्मचेतनाने स्पंदित किया, गतिशील किया और विकसित भी किया। यही कारण है कि अपेक्षाकृत इस छोटेसे समाजने भी अन्य समाजों की अपेक्षा अधिक संख्यक सेवा-भावी स्त्री-पुरुषोंको राष्ट्रके चरणोंपर अर्पित किया है, जिसमें बूढ़े, जवान, स्त्री-पुरुष होन-हार तरुण-तरुणी और त्यागी भिक्षु वर्गका भी समावेश होता है।

मानवताके विशाल अर्थमें तो जैन समाज अन्य समाजोंसे अलग नहीं। फिर भी उसके परम्परागत संस्कार अमुक अंशमें इतर समाजोंसे जुदे भी हैं। ये संस्कार मात्र धर्म कलेवर बन धर्मचेतनाकी भूमिकाको छोड़ बैठे थे। यों तो गाँधीजीने विश्वभरके समस्त सम्प्रदायों की धर्मचेतनाको उत्प्राणित किया है; पर साम्प्रदायिक दृष्टिसे देखें तो जैन समाजको मानना चाहिये कि उनके प्रति गाँधीजीकी बहुत बड़ी और अनेकविध देन है। क्योंकि गाँधीजीकी देनके कारण ही अब जैन समाज अहिंसा, स्त्री-समानता वर्ग-समानता, निवृत्ति और अनेकान्तदृष्टि इत्यादि अपने विरासतगत पुराने सिद्धान्तोंको क्रियाशील और सार्थक साबित कर सकता है।

जैन परम्परामें "ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै" जैसे सर्वधर्मसमन्वयकारी अनेक उद्गार मौजूद थे। पर आम तौरसे उसकी धर्मविधि और प्रार्थना बिल्कुल साम्प्रदायिक बन गई थी। उसका चौका इतना छोटा बन गया था कि उसमें उक्त उद्गारके अनुरूप सब सम्प्रदायोंका समावेश दुःसंभव होगया था। पर गाँधीजी की धर्मचेतना ऐसी जाग-रित हुई कि धर्मोंकी बाड़ाबन्दीका स्थान रहा ही नहीं। गाँधीजीकी प्रार्थना जिस जैनने देखी सुनी हो वह कृतज्ञता पूर्वक बिना कबूल किये रह नहीं सकता कि 'ब्रह्मा वा विष्णुर्वा' की उदात्त भावना या 'राम कहो रहिमान कहो' की अभेद भावना जो जैन परम्परामें मात्र साहित्यिक वस्तु बन गई थी; उसे गाँधीजीने और विकसित रूपमें सजीव और शाश्वत किया।

हम गाँधीजीकी देनको एक-एक करके न तो गिना सकते हैं और न ऐसा भी कर सकते हैं कि गाँधीजी की अमुक देन तो मात्र जैन-समाजके प्रति ही है और अन्य समाजके प्रति नहीं। वर्षा होती है तब क्षेत्रभेद नहीं देखती। सूर्य चन्द्र प्रकाश फेंकते हैं तब भी स्थान या व्यक्तिका भेद नहीं करते। तो भी जिसके घड़ेमें पानी आया और जिसने प्रकाशका सुख अनुभव किया, वह तो लौकिक भाषामें यही कहेगा कि वर्षा या चन्द्र सूर्यने मेरेपर इतना उप-कार किया। इसी न्यायसे इस जगह गाँधीजीकी देन का उल्लेख है, न कि उस देनकी मर्यादाका।

गाँधीजीके प्रति अपने ऋणको अंशसे भी तभी अदा कर सकते हैं जब हम उनके निर्दिष्ट मार्गपर चलनेका दृढ़ संकल्प करें और चलें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय इतिहासमें अहिंसा

(लेखक—श्रीदेवेन्द्रकुमार)

सृष्टि और मनुष्यका विकास कैसे हुआ, यह प्रश्न अभी भी विवाद-ग्रस्त है। धार्मिक कल्पना और वैज्ञानिक अनुसन्धान भी इस विषयमें हमारी अधिक सहायता नहीं करते। इतिहासकारोंने सृष्टि विकासके जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं उनके अनुसार मानव जातिका इतिहास कुछ ही हजार वर्षोंका है। अंग्रेज इतिहासकार, एम० जी० वेल्सने विश्व इतिहासकी रूपरेखा खींचते हुए, ई० पू० छठवीं सदीको मानवीय सभ्यताकी विभाजक रेखा स्वीकार किया है। आपके अनुसार यह सदी ही वह समय है जब मानवजातिने दर्शन और चिन्तनके नये युगमें कदम रक्खा। और तभीसे आधुनिक विचारधाराकी नींव पड़ी। एच० जी० वेल्सका यह भी कहना है कि आरम्भिक युगोंमें मनुष्य निरा असभ्य था। बहुत युगोंके विकासके बाद उसमें विचारपूर्वक सोचनेकी चेतना आई और उसने रक्तिम बलिदान, पुरोहिती तथा आडम्बरके विरुद्ध नई क्रान्ति की, यह क्रान्ति भारत, बेबोलीन, चीन और एफेससमें एक साथ हुई। इस कालमें कई समाज नेता और सुधारक उत्पन्न हुए, जिन्होंने पुराने गुरुडमका विरोधकर नये आदर्शोंकी प्रतिष्ठा की। उनके मतसे सरल जीवन और आत्मसंयम ही जीवन सुखी बनानेका सच्चा उपाय था। जहाँ तक विश्व इतिहासकी दृष्टिसे विचार करनेका प्रश्न है, उक्त लेखकका कथन प्रायः ठीक है। परन्तु भारतीय इतिहासमें यह 'सामाजिक क्रान्ति' ई० पू० छठवीं सदीके कई सौ वर्ष पहिले हो चुकी थी; भगवान महावीर और बुद्धने जिस विचार धारापर जोर दिया वह बहुत प्राचीनकालसे भारतीय जीवनमें प्रवाहित होती चली आरही थी, उसका ठीक आकलन किये बिना हम अहिंसाका सही विकास नहीं समझ सकते।

'वेद-वाङ्मय' भारतका ही नहीं विश्वका प्राचीन वाङ्मय है। उसका तथा दूसरी सभ्यताओंके विकासका अध्ययन करनेसे एक बात विशेषरूपसे हमारा ध्यान आकर्षित करती है और वह यह कि सभी सभ्य मानव जातियाँ आरम्भमें शिकार और खेती-बाड़ीसे अपना कार्य चलाती रहीं। इस प्रथाके साथ 'पशुबलि' अनिवार्य रूपसे जुड़ी हुई थी। कहीं-कहीं मनुष्योंकी भी बलि दी जाती थी, वेदोंमें मनुष्यबलि-का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु पशुबलिका स्पष्ट विधान है। यज्ञ वैदिक आर्योंका प्रधान सामाजिक उत्सव था। उसमें सभी जातिके लोग भाग लेते। यज्ञोंका मुख्य लक्ष्य ऐहिक सुख-समृद्धि था, धन धान्यकी बढ़ती और शत्रुओंका संहार ही आरम्भिक आर्योंकी धार्मिकताका उद्देश्य था। पर ज्यों-ज्यों उनमें विचार चेतना बढ़ी त्यों-त्यों पशुबलिके विरुद्ध भीषण प्रतिक्रिया जोर पकड़ती गई। इस प्रतिक्रियाका स्पष्ट आभास हमें उत्तर वैदिककालमें होने लगता है। आगे चलकर 'सोलहमहाजनपद' युगमें वह आभास, कोरा आभास ही नहीं रह जाता किन्तु अहिंसा भारतीय संस्कृति की 'रीढ' बन जाती है। महावीर और बुद्धके युगसन्देशोंके लिये पृष्ठभूमि बहुत पहिलेसे बनना शुरू होगई थी, और एक प्रकारसे उनके समय भारतीय राजनीति, समाजसंस्थान और दार्शनिक विचार स्पष्टरूपसे अपना आकार-प्रकार ग्रहण कर चुके थे, उन्होंने उसमें केवल 'अहिंसा और मनुष्यता' का दार्शनिक एवं आध्यात्मिक सौन्दर्य प्रतिष्ठित कर उसे नई दिशामें मोड़ा।

ऊपर कहा जा चुका है कि महावीर और बुद्ध-के पहले ही 'हिंसा और अहिंसा' का संघर्ष शुरू

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होचुका था। 'यह संघर्ष' धार्मिक हिंसाके अनौचित्यसे प्रारम्भ हुआ। परन्तु धीरे-धीरे वह मानव-समाज के सभी अङ्गोंमें फैलता गया। इसका क्रमिक विकास समझनेके लिये दो एक घटनाओंका अङ्कन कर देना जरूरी है। वैदिक वाङ्मयमें ऐसी बहुत-सी कहानियों का उल्लेख मिलता है जिससे इतना ऐतिहासिक तथ्य स्पष्ट निकल आता है कि 'वसु' चैचोमयरके समय धार्मिक सुधारकी एक लहर चली जो यज्ञोंमें पशुके बजाय अन्नकी आहुति देनेके पक्षमें थी। तथा जो कर्मकाण्ड और तपकी जगह भक्ति और सदाचारपर बल देती थी। आगे चलकर यही विधि सात्वत-विधि कहलाई। इसके साथ वासुदेव कृष्ण संकर्षण प्रद्युम्न एवं अनुरुद्धका नाम जुड़ा हुआ है। यह सात्वत विधि पूर्णरूपसे अहिंसक थी। पर इसमें अहिंसाका भाव एकाएक नहीं आया, विश्वमें कोई भी घटना बिना कारण नहीं घटती। सात्वत पूजा विधिके विषयमें भी यही समझना चाहिये। जैन पुराणोंमें यदुकुमार 'नेमिनाथ' के वैराग्यकी घटना इस बातका स्पष्ट प्रमाण है किस तरह आर्योंके जीवन और संस्कृतिमें परोपकारके लिये कुछ लोग अपने व्यक्तिगत सुखको लात मारकर साधनामय जीवन स्वीकार कर रहे थे। नेमिनाथ रथपर बैठे, राजुलको व्याहने जा रहे थे, रास्तेमें उन्होंने देखा बहुतसे पशु-पक्षी एक बेड़ेमें घिरे छटपटा रहे हैं। उन्होंने पूछा क्यों? उत्तर मिला, साथी क्षत्रिय कुमारोंको भोजन के लिये इनका शिकार होगा? युवकका हृदय करुणा और समानानुभूतिसे भर आया, उन्होंने 'मौर' उतार कर दीक्षा ले ली। जब राजुलने यह सुना तो वह साध्वी भी उमङ्गोंकी चिता जलाकर गिरनार पर्वत पर तपस्या करने लगी। उनके इस साधना और त्यागमय जीवनका जो असर गुजरात और आस-पासकी लोकसंस्कृतिपर पड़ा वह आज भी अमिट है। उसके बाद दूसरा उदाहरण पार्श्वनाथका है, कि उन्होंने किस प्रकार सहिष्णुता और धैर्यसे व्यक्तिगत विरोधका बदला चुकाया। एक नहीं कितने ही जन्मों तक वे विरोधी हिंसाका अहिंसक सामना करते रहे परन्तु कभी भी उनके भावोंमें विकृति नहीं आई। इन दो उदाहरणोंसे इस बातमें सन्देह नहीं रह जाता कि भारतीय इतिहासमें अहिंसाकी प्रतिष्ठा व्यक्ति-साधना और त्यागके बलपर ही हुई। नेमिकुमार और पार्श्वनाथ किसी सम्प्रदायके नहीं थे, क्योंकि सम्प्रदाय उस समय नहीं थे। ये लोग चाहे जिस वर्गके रहे हों, परन्तु वे उन विचारकोंमें नहीं थे जो यज्ञमें पशुवलि आदिके समर्थक थे। मैं समझता हूँ हिंसा और अहिंसाका यह विचार तभीसे मनुष्यके साथ चला आरहा है जबसे उसमें सोचने और समझनेकी बुद्धि आई।

उपनिषद और सोलह महाजन-पद-युगमें यह प्रतिक्रिया अधिक स्पष्टरूपसे दिखाई देने लगती है। आर्य अब 'जन' से जनपद और जनपदसे महाजन पद संस्कृतिमें पहुँच चुके थे। साथ ही उनमें महाजनपदसे 'साम्राज्यनिर्माण' की प्रतिक्रिया चल रही थी। हिंसा और अहिंसाका ठीक व्यक्तित्व इस समय हमारे सामने आया। यह दो रूपमें व्यक्त हुआ एक ओर तो वे लोग थे जो पिछली दार्शनिक परम्पराको छोड़नेके लिये प्रस्तुत न थे और उसमें उनकी पूरी आत्मा थी, परन्तु उसके व्यावहारिक रूपमें उन्होंने अहिंसाको स्वीकार कर लिया। इस प्रकार पहले पहल उपनिषदोंमें सुनाई दिया "प्लवा एते प्रदृढ़ा-यज्ञरूपा" ये यज्ञ फूटी नावकी तरह हैं, सृष्टिके अन्दर एक चेतन शक्ति है जो उसका संचालन करती है, प्रायः उस शक्तिको ब्रह्म कहते हैं, इस प्रकार इन्द्र, वरुण आदि पुराने वैदिक देवताओंकी गद्दीपर उपनिषदोंके विचारकोंने ब्रह्मकी स्थापना कर दी! और यज्ञवाली पूजाविधिके बजाय, एक नये आचरण-मार्गका उपदेश दिया। यह आचरण-मार्ग था दुश्चरितसे विराम, इन्द्रियोंका वशीकरण, मनकी शुचिता और पवित्रता। कठ-उपनिषदमें मनुष्यकी जीवनकी यात्राका चरम लक्ष्य विष्णुपदकी प्राप्ति कहा गया है। इन विचारोंसे स्पष्ट है कि 'आत्मतत्त्व' की ओर आर्योंकी चिंताका विकास होरहा था, परन्तु इसके सिवा एक और वर्ग था जो आत्मतत्त्वको

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानते हुए भी अनीश्वरवादी था, भगवान बुद्ध संभवतः इसी वर्गके थे उन्होंने देखा कि मनुष्य 'अज्ञात ईश्वर' और आत्मतत्त्वके मोहमें पड़ कर विविध अन्धविश्वासों एवं संग्रहशील प्रवृत्तियोंमें उलझा है, फलतः ईश्वर और आत्माका निषेध करते हुए उन्होंने वर्तमान और दृश्यमान दुख-समूहके विरोधका उपाय बताया। भगवान बुद्ध पूर्वतः अहिंसावादी थे, महावीर और बुद्धमें तात्त्विक अन्तर यह था कि महावीर आत्माकी सत्ता स्वीकार करते हुए भी उसे ईश्वर होनेके योग्य समझते हैं, उपनिषद्में एक ही ब्रह्मको समूची चेतनाका प्रतिनिधि स्वीकार किया गया है। इस तरह ये तीनों विचार धाराएँ अपने ढङ्ग से भारतीय संस्कृतिमें अहिंसक भावना ढाल रही थीं अहिंसाकी दार्शनिक पृष्ठभूमिमें आगे चलकर इन विचारोंका बहुत गहरा असर दिखाई देगा। सबसे बड़ी बात यह है कि दार्शनिक चिंतनमें भेद होते हुए भी 'अहिंसा' की उपासनामें भारतीय विचारकोंकी समान-आस्था बढ़ी। महावीर और बुद्धकी धर्मदेशना का तो ऐसा प्रभाव पड़ा कि यज्ञोंकी प्रथा भारतीय सामाजिक जीवनसे एक दम उठ गई और उसके स्थानपर सात्विक जीवन, मित आहार-विहार एवं आत्म-चिन्तनकी प्रवृत्ति बढ़ी यज्ञकी जगह भक्ति, भारतीय लोक-जीवनमें स्फुरित हुई। वैदिकोंकी 'आश्रम-प्रणाली'में अहिंसाका भाव ही सर्वोपरि दीख पड़ता है ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी इन चारों आश्रमोंके क्रमिक अध्ययनसे यह भली भाँति स्पष्ट होजाता है कि वैदिक साधककी जीवन-साधना किस प्रकार आगेके आश्रमोंमें अहिंसक एकान्त अकिंचन और आत्म-निर्भर होती चली गई है। उच्चकोटिके सन्यासीको परमहंस' की संज्ञा दी गई है. इसका अर्थ है 'आत्मा'। परम अर्थात् उत्कृष्ट आत्मविकासका यह उत्कृष्ट रूप बलिदान और बाह्य आडम्बरसे कथमपि प्राप्य नहीं, वह आत्मचिन्तन और साधना द्वारा ही सम्भव है। ऊपर इस बातका संकेत होचुका है कि भारतीय संस्कृतिमें 'पशुबलि' के औचित्य और अनौचित्यके सिलसिलेमें हिंसा और अहिंसाका प्रश्न उठा था, परन्तु इसका आशय यह नहीं है कि उसका प्रभाव समाजके सामूहिक और व्यक्तिगत जीवन पर नहीं पड़ा।

दार्शनिक जागरणके साथ साथ हिंसा की परिभाषामें भी बहुतसा हेरफेर हुआ एक समय नारा था —"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति"—इसका सीधा अर्थ था कि अहिंसा अच्छी वस्तु है परन्तु वैदिकी हिंसा भी हिंसा नहीं अपितु अहिंसा ही है। पर यह तर्क अधिक दिन नहीं ठहरा। आर्य जीवनके धार्मिक क्षेत्रोंमें रक्तपात तो नहीं हुआ किन्तु भोग विलास और सामाजिक उत्सवमें अभी भी क्रूर हिंसा होती थी। अशोककी धर्मनीति एवं सामाजिक सुधारोंसे इन बातों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। मनुष्यमें अपने विश्वास और विचारोंके प्रति बहुत ही कट्टर ममता होती है, एक बार जो विचार उसके मनमें जम जाता है उसे शीघ्र हटाना बहुत कठिन है। पिछली धार्मिक क्रान्ति में हिंसा अवश्य कम हुई थी परन्तु पुनः लोग उसकी ओर आकृष्ट होरहे थे। बुद्ध और महावीरके प्रयत्नों से धार्मिक अहिंसाका प्रसार तो हुआ परन्तु सामाजिक जीवनमें वह अभी पूरे तौरपर प्रतिष्ठित नहीं हुई थी। इतने विशाल देशमें सहसा युगोंके संस्कारों को बदलना भी आसान बात नहीं थी। अशोक जब शासनारूढ़ हुआ तो उसने भारतीय इतिहासमें एक सर्वथा नई और उदात्त नीतिका प्रवर्तन किया। यह नीति कलिङ्ग युद्धको लेकर शुरू हुई। या तुरन्त राज्य स्थापनाका कार्य जारी करते हुए उसने कलिङ्ग (उड़ीसा) पर हमला बोला। कहते हैं उसमें २॥ लाख कलिङ्ग वासियोंने अपनी स्वाधीनताके लिये प्राणाहुति दे दी। इस भयङ्कर रक्तपातने विजेता अशोकके विचारोंपर गहरी छाप डाली। उसने तलवारकी अपेक्षा धर्मविजय द्वारा अपने राज्यका विस्तार किया उस समय सामाजिक उत्सव तथा खानपानमें बहुत ही भोंडी हिंसा होती थी, अशोकने उसे 'विहिंसा' कहा है। 'समाज' और 'विहार-यात्रा' जिसमें कि अकारण पशुओंका वध होता था उसने बन्द करवा दी और उसके स्थानपर धर्मयात्राकी नींव डाली।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक 'रथयात्रा' उसीका विकसित रूप है। अशोककी अहिंसा नीतिका उद्देश्य अकारण हिंसा एवं भोंड़ी क्रूरताको रोकना था प्रायः वह सबके प्रति समचर्याका पक्षपाती था, उसके सारे कार्य और नीति इसी भावनासे अनुप्राणित थे. एक राजाके नाते वह जिस प्रकारकी अहिंसा बिना किसी साम्प्रदायिक आग्रहके प्रसारित कर सकता था उसमें अशोकने कोई कोर-कसर नहीं रखी, कुछ ऐतिहासिकोंने मौर्य साम्राज्यके पतनमें उसकी 'धर्मविजय' की नीतिको दोषी ठहराया है, पर जिन्होंने इतिहासका बारीकीसे मनन किया है, उनसे यह बात छिपी नहीं कि अशोक की नीतिके कारण ही भारत महत्तर बना और वह अपनी संस्कृति एशिया तथा अन्य राष्ट्रोंमें फैला सका यदि मौर्य साम्राज्यके पतनका कारण अशोककी नीति को माना जाय. तो शुङ्ग और गुप्त साम्राज्यके पतनका कारण क्या था? अस्तु! यहाँ इतिहासकी छानबीन करना हमारा लक्ष्य नहीं है। अशोकके बाद जिन लोगोंने अहिंसा और शान्तिकी नीतिको आगे बढ़ाया उनमें सम्प्रतिका नाम सर्वप्रथम लिया जायगा। सम्प्रतिने जैनधर्मके प्रसारके लिये अनेक जतन किये परन्तु यहाँ जैनधर्म या बौद्धधर्मका संकुचित अर्थ नहीं लेना चाहिये।

मौर्य साम्राज्यके पतनके बादसे ई० प्रथम सदी तक हम दो विचारोंका साथ-साथ विकास देखते हैं, पुष्यमित्र शुङ्गने न केवल शुङ्गराज्य स्थापित किया अपितु 'अश्वमेध-पुनरुद्धार' और धार्मिक रूढ़ियोंको पुनः स्थापित किया उसकी घोषणा थी—"यो मे श्रमणशिरे दास्यति तस्याहं दीनारं-शतं दास्यामि"—पिछले युगों में भारतीय संस्कृतिसे जो धार्मिक हिंसा उठती जारही थी, इस युगमें वह पुनः जीवित हो उठी ठीक इसी समय 'अहिंसाका वैज्ञानिक विवेचन लिखितरूप में हमें देखनेको मिलता है। ऐसा जान पड़ता है कि शुङ्ग शासकोंकी प्रतिक्रिया अधिक नहीं टिक सकी। आर्य विचारकोंके सामने प्रश्न आया कि अहिंसाका दार्शनिक आधार क्या हो? इसका प्रथम विश्लेषण जहाँ तक इस लेखकका अनुमान है, 'ओघनिर्युक्ति' में मिलता है. यह ई० पू० का जैनग्रन्थ है। उसमें अहिंसाका यह लक्षण किया है।

'मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामित्तेण समिदस्स॥'

'जीव मरे या न मरे, किन्तु जो अयत्नपूर्वक प्रवृत्ति करता है वह हिंसक है पर जो प्रयत्नशील है हिंसा हो जानेपर भी वह निर्दोष है।'

आचार्योंने इसीलिये 'मूर्च्छा' और 'प्रमाद' को हिंसा कहा है। इसी सिद्धान्तको तत्त्वार्थसूत्रमें इस प्रकार ग्रथित किया गया है—'प्रमत्तयोगा-प्राणव्यपरोपणं हिंसा'—अर्थ है कि प्रमादके योगसे प्राणोंका वियोजन करना, ये प्राण परके भी हो सकते हैं और अपने भी। जैन अहिंसाकी मौलिक और दार्शनिक मीमांसा इससे बढ़ कर दूसरी नहीं हो सकती? मनुष्य बुद्धि जो परे है और जबसे उसमें यह चेतना जाग्रत हुई वह 'किसी भी तत्त्व' को बिना दर्शनके स्वीकार नहीं करता। वेदयुगका क्रियाकांड भले ही जिज्ञासा और भयमूलक रहा हो, परन्तु आगे आर्य विचारकोंने सृष्टि, ईश्वर, लोक, परलोक आदि पर खूब चिन्तन किया बिना दार्शनिक समाधानके उन्होंने किसी बातको स्वीकार नहीं किया।

मनुष्य 'अहिंसा' को क्यों अपनाए? हिंसा क्या है? इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर खोजनेपर 'चेतन' 'तत्त्व' की अनुभूति हुई; इस चेतन या जीव तत्त्वकी सत्ता प्रथक् है यह वह जड़से उत्पन्न है? वह स्वतन्त्र एक इकाई है, या परमार्थसत्ताका एक अंश है. इन प्रश्नोंका बहुत समय विचार होता रहा और तरह तरहके मत खड़े हुए? उनमें जो लोग 'ईश्वर'को कर्तारूप मानते थे उनके विचारोंका अन्त वेदान्त' विचार धारामें हुआ. पर जो 'जीव'का स्वतन्त्र अस्तित्व समझते थे, या जिन्होंने आत्मवाद'के गहरे मोहका निरसन करनेके लिए—अनात्मवाद और अनीश्वर-वादका समर्थन किया—उनकी विचाराधारा श्रमण कहलाई! इस प्रकार—आत्मानुभूति द्वारा 'चेतन'की सत्ता हो जानेपर—भारतीय विचारकोंकी दृष्टि. बाह्य से हटकर अन्तरकी ओर उन्मुख हुई! उन्होंने हिंसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

या बलिद्वारा नहीं, अपितु ध्यान, धारणा एवं समाधिको अपनी साधनामें जगह दी ! शङ्करके वेदान्तमें 'ईश्वर'का चाहे जो रूप हो, परन्तु यह स्पष्ट है कि उसमें हिंसाको लेशमात्र भी स्थान नहीं है ? इसी प्रकार वानप्रस्थ और सन्यास आश्रममें भी साधकोंकी जो चर्या बतलाई गई है उसमें अपरिग्रह और अहिंसाका सूक्ष्म विचार है ? 'ओघनिर्युक्ति'कारके अहिंसाका लक्षण और भारतीय साधनामें अहिंसाका प्रवेश, एकाएक नहीं हो गया, वह सदियोंकी चिन्तना और साधनाका परिणाम है । विभिन्न धर्मोंके शास्त्रोंका अध्ययन करनेसे यह स्पष्ट आभास हो जायगा कि किस प्रकार भारतीय विचारक एक दूसरेसे प्रभावित होते रहे ? साम्प्रदायिकता भारतमें ७वीं ८वीं सदीके बाद आई ! इसके पहले खुलकर विचारोंका आदान-प्रदान होता था ।

'वेदान्त' की पृष्ठभूमि भागवतधर्म और बौद्ध-दर्शनके कुछ विचार हैं ? शुङ्गकालमें भागवत-धर्मको जन्म, उस विचारधाराने दिया था जो वेदयुगसे ही हिंसाके विरोधमें उठी थी । चिरकालके संघर्षके बाद उस समय इस विचारधाराकी इतनी प्रबलता थी—कि हिंसा पूजा विधानके प्रति जनता घृणा करने लगी थी । इसलिये भागवतधर्म और उसके उत्तरकालीनरूप वैष्णवधर्ममें 'अहिंसा' को प्रधान स्थान दिया गया ? गुप्तकालमें पुनः हिन्दूधर्मका उद्धार हुआ, परन्तु इतिहासकी धारा सदैव आगे बढ़ती है, उसे पीछे नहीं ढकेला जा सकता ? यह कहा जा चुका है कि आर्योंने धार्मिक उपासना प्रकृतिसे ग्रहण की थी । उन्होंने प्रकृतिमें दो तत्त्व देखे, भद्र और भयङ्कर । इन्हींके आधार-पर शिव और रुद्र इन दो शक्तियोंकी कल्पना की गई; और उसीके अनुरूप उसकी उपासना प्रचलित हुई । भागवद्धर्ममें उसे 'ब्रह्म' कहा गया और उसके विष्णु आदि अवतार स्वीकार किए गए—पर इन अवतारोंकी उपासनापद्धति पूर्ण अहिंसक रही ? आचार्य शङ्करने सगुणकी जगह ब्रह्मको निर्गुण माना । परन्तु अहिंसा वहाँ भी आवश्यक मानी गई । अहिंसाका व्यवहारमें जितना सूक्ष्मपालन जैन करते हैं—उतना ही वैष्णव भी करते हैं । इसके पीछे उनकी दार्शनिक विचारधारा अवश्य कुछ भिन्न है ?

अहिंसाके विषयमें जैनधर्मका दृष्टिकोण वस्तुतः मौलिक है, यह मौलिकता इसमें है कि जैनविचारकोंने अहिंसाकी व्याख्याका विचारबिन्दु आत्माको माना है । इसे दूसरे शब्दोंमें आध्यात्मिक भी कहा जा सकता है; 'अहिंसा' या हिंसा—पहले 'स्व' में होती है । बाहर तो उसकी प्रतिक्रिया ही देखनेमें आती है । अहिंसाका विचार करते हुए उन्होंने चार बातोंका विचार किया है । हिंस्य, हिंसक, हिंसा और हिंसाका फल । सूक्ष्मदृष्टिसे विचारनेपर यह स्वतः अनुभवमें आता है कि व्यक्ति कषाय करके पहले स्वयं अपने भावोंका हनन करता है, इस लिए वह स्वयं हिंस्य और हिंसक है । यह बहुत ही सूक्ष्म विवेचन है ? वास्तवमें देखा जाय तो आत्मा न तो हिंस्य है और न हिंसक । गीताकारने कहा है:—

'य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतौ नाऽयं हन्ति न हन्यते ॥'

ऐसी स्थितिमें हिंसा और अहिंसाका प्रश्न ही नहीं उठता ? यह विवेचन वस्तु-स्वभावको देखनेकी दिखानेकी दृष्टिसे है । यदि व्यवहार-जगतमें उसे लगाया जाय तो हमारी सारी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाय ? इसलिए 'अहिंसा'का व्यवहारिक पक्ष भी है । प्रकृत विश्वमें 'सुखदुख' भय और आशङ्का का अनुभव सभीको होता है । प्रत्येक प्राणीमें जीनेका मोह है, चाहे वह कैसी परिस्थितिमें क्यों न हो; अतः यथाशक्ति उनमें प्राणोंकी विराधनासे बचना ही व्यवहारिक अहिंसा है, जो साधक आलस्य रहित होकर, अपने लौकिक जीवनका निर्वाह करता है—वह अहिंसक है ? पर और अध्यात्मिक साधनामें लगा हुआ प्रमादी मनुष्य हिंसक है ? इस तरह अहिंसाका सारा तत्त्वज्ञान आत्माकी जागरुकतापर ही निर्भर रहता है ?

'अहिंसा' अनुभूतिगम्य है ? वह तर्क सिद्ध नहीं है ? इसलिये अहिंसाका जितना भी तत्त्वज्ञान है, वह 'आत्मानुभूति' पर अवलम्बित है ? मनुष्यने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब अपनेमें स्थित चैतन्यका अनुभव किया होगा तभी उसके मनमें दूसरे प्राणियोंके प्रति ममताका भाव जमा होगा ? किन्तु मानव जातिके इतिहासमें अनुभूति भी बुद्धिका विषय बनती रही है ? भगवान् बुद्धके सामने जब दार्शनिक प्रश्न आए तो उन्होंने मौन रहना ही श्रेष्ठ समझा। उन्होंने विश्वमैत्री, समता और सदाचारका जो भी उपदेश किया वह अनुभूतिसे ही उद्भूत था, परन्तु आगे चलकर—उस अनुभूतिकी जो छानबीन हुई—उसने उनके धर्मको दर्शनकी अनेक धाराओंमें बाँट दिया। 'अहिंसा' की भी यही गत हुई। पं० 'आशाधर' (१३वीं सदी)के समय 'माँस भक्षण' करना चाहिए या नहीं, आदि तार्किक प्रश्न पूछे जाते थे। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सागार धर्मामृतमें ऐसे ही प्रश्नोंका बहुत ही कटु उत्तर दिया है। किसीने तर्क उपस्थित किया कि प्राणीका अङ्ग होनेसे माँस भी भक्षणीय है; जैसे गेहूँ आदि! इसपर आशाधरजीने उत्तर दिया है—'प्राणीका अङ्ग होनेसे ही प्रत्येक चीज़ भक्षणीय नहीं होजाती! क्योंकि स्त्रीत्व रहनेपर भी पत्नी ही भोग्य है न कि माता? तो फिर इसका निर्णय कैसे हो; साफ़ है कि विवेक-बुद्धि? हमें स्वयं सोचना होगा कि व्यवहारमें कैसा आचरण—अहिंसा—हो सकता है? सम्भवतः इसीके विवेचनके लिये—और व्यवहारमें अहिंसाको खड़ा करनेके लिये उसमें भेद कल्पित हुए! आखिर खण्डरूपमें ही कोई सिद्धान्त जनताके जीवनतक पहुँच सकता है?

अहिंसाका सम्पूर्ण आचरण गृहस्थोंके लिये असम्भव है, इसलिये उन्हें संकल्पी-हिंसासे बचनेका प्रयत्न करना चाहिए! इसका आशय यह है कि वह संकल्प करके दूसरोंको हानि पहुंचानेकी चेष्टा न करेगा, परन्तु साथमें उसका जीवन इतना सरल और आडम्बर-शून्य होना चाहिए कि जिससे अप्रत्यक्षरूपसे भी वह, अपने लिये दूसरोंके हित न छीनें! यदि वह अपने भोग-विलासका अधिक विस्तार करता है तो निश्चित है कि उसके लिये अधिक विरोधी और आरम्भी-हिंसा करना पड़ेगी? और ऐसे व्यक्तिके लिये—संकल्पी अहिंसाका कोई मूल्य नहीं रह जाता? विरोधी और आरम्भ-सम्बन्धी हिंसा इसलिये अनिवार्य है; क्योंकि गृहस्थको सांसारिक उत्तरदायित्वके लिये वह आवश्यक है? अहिंसाका यह संतुलितरूप ही एक ओर युद्धमें हत्याका विधान करता है और दूसरी ओर जलगालन का उपदेश करता है। वैदीययुगमें जैन-गृहस्थके आचार-विचारमें जो अहिंसक बारीकियाँ दीख पड़ती हैं, वे आज भी ज्योंकी त्यों हैं; उनके इस आचार-विचारको देखकर, सहस्रों लोग जैन-धर्मकी अहिंसाको अव्यवहार्य समझने लगते हैं? इसमें सन्देह नहीं कि शास्त्रोंके रूढ़िवादी अध्ययनसे गृहस्थोंमें बहुत-सा मुनिधर्म प्रवेश पा गया है! व्यक्तिकी दृष्टिसे चाहे यह कितनी ही उच्चकोटिकी साधना हो, परन्तु समाजकी दृष्टिसे वह किसी कामकी नहीं। इसमें व्यर्थ अहङ्कारकी पुष्टि होती, पर व्यक्तिकी आलोचना सिद्धान्तकी आलोचना नहीं है।

सर्वभूत दयाका भाव सभी धर्मोंमें अच्छा कहा गया है। इसलिये वे हिंसा, झूठ, चोरी, दुःशील और परिग्रहसे बचनेका उपदेश करते हैं, या इस उपदेशमें भी अहिंसाका भाव दिया हुआ है और इसकी सङ्गति तभी ठीक बैठ सकती है जब अहिंसाका सम्बन्ध आत्मासे माना जाय। झूठ बोलना, चोरी करना और परस्त्रीगमन करना क्यों बुरा है? ज़बकि देखा गया है कि उससे मनुष्यको एक प्रकारका सुख-सन्तोष मिलता है। इस सुख-सन्तोषसे आत्माको वञ्चित करना उसे दुख पहुँचाना है; और यह हिंसा ही है? यदि हम आत्माको पकड़कर चलें तो सहजमें इस प्रश्नका उत्तर मिल जायगा। हम स्वयं अनुभव करते हैं कि झूठ, चोरीसे जो सुख मिलता है वह क्षणिक है। क्षणिक ही नहीं, दूसरे क्षणमें दुखदायी भी है। क्यों? वह आत्माके व्यक्तित्वका हनन करता है। वह सुख नहीं, सुखाभास है। आत्मा स्वयं अच्छे-बुरे कार्योंका निर्णायक है, और यहीं वह आत्म-न्याय है जिससे पापी व्यक्ति, क़ानून और समाजसे बचकर भी आत्मग्लानिमें गलता रहता है। जैन-वाङ्मयमें पाँच पापोंके मूलमें 'हिंसा'को ही बताया गया है, इसलिये

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

पाँच महाव्रतोंके मूलमें अहिंसा ही निहित समझना चाहिए।

'अहिंसा' से न केवल भारतीयोंका जीवन ही संस्कृत हुआ अपितु—उसके स्थापत्य, ललितकला और वाङ्मयपर भी उसकी अमिट छाप पड़ी। मौर्य-कालसे गाँधीयुग तक जितना जो भी विकास, कलादिका हुआ उसमें भारतीयोंकी सहज सुकुमार वृत्तियों और भावोंकी ही अभिव्यक्ति हुई है। कुछ स्थल और देवस्थान अवश्य ऐसे हैं जहाँ अभी भी धार्मिक हत्याएँ होती हैं. पर नगण्यरूपमें। भारतमें वस्तुतः आज अहिंसाका भाव इतना उग्र है कि कट्टरसे कट्टर सनातनी भी अश्वमेधकी बात भी नहीं कर सकता? क्यों, कारण स्पष्ट है? विश्वशान्तिके नामपर जो कुछ यज्ञ अभी हालमें हुए—उनका शाकल्य एकदम सात्विक था। आरम्भमें भारतीय जीवन कितना असंस्कृत था, इसकी कल्पना भी इस युगमें नहीं की जा सकती; कोई भी समाज धीरे २ संस्कृत होता है। आज गो-हत्या बहुत बड़ा पाप है, परन्तु पुराने—समयमें वह आम रिवाज था। 'उत्तररामचरित' में जब "विश्वामित्र' आश्रममें पहुँचे तो उनके स्वागतमें एक बछियाका वध किया गया। 'भवभूति' ने इस क्रियाके लिए—'मिड़मिड़ायता' शब्दका प्रयोग किया है। कलकत्तेकी काली या इस प्रकारकी अन्य प्राकृत देवियोंको छोड़कर, शेष हिन्दू देवता अब अहिंसक उपासनासे ही सन्तुष्ट होते हैं? हिन्दू सन्तों, वेदान्तियों और वैष्णवोंने इस बारेमें अकथनीय प्रयत्न किए। विभिन्न विचारधाराओंके रहते हुए भी अहिंसा-के प्रति सभी धर्मोंकी आस्था है।

इस प्रकार इतिहासकी गतिके साथ जहाँ अहिंसा भारतीय जीवनधारामें स्पन्दित हो रही थी, वहाँ उसमें कुछ रूढ़ियाँ भी आ चलीं। सिद्धान्त जब तक गतिशील रहते हैं तभी तक वे हमारे जीवनको सुसंस्कृत और स्वस्थ बना सकते हैं; पर जब उसमें जड़ता आ जाती है तो सहसा चट्टानकी तरह हमारे विकासको रोक देते हैं। मध्ययुगमें अहिंसामें इस प्रकारकी स्थिरता आई! एक ओर 'भाखा' में 'जीव-हत्या'पर घृणाके गीत लिखे जा रहे थे और दूसरी ओर—जीवनमें गहरी और विषाक्त आसक्ति बढ़ रही थी। जिस तरह राजपूतोंकी वीरता—प्रेम एवं भोग-विलासमें निखर रही थी उसी तरह—अहिं-सकोंकी अहिंसा जीवतन्तुओंको बचाती हुई—मनुष्यका शोषण कर रही थी। अंग्रेजोंकी शासन-छायामें दोनोंके लिए छूट थी। एक ओर—कालीके मन्दिरोंमें बलिकी स्वतन्त्रता थी और दूसरी ओर जैनियोंके अहिंसा चरणमें किसी प्रकारकी बाधा न आए इसका भी सुप्रबन्ध था। जैनी चतुर्दशीको हरा शाक नहीं खा सकता परन्तु परोंकी टोपी और विदेशी चमड़ेके जूते पहन सकता है? फिर भी वह अनुव्रती है? एक मारवाड़ी वैष्णव, एक ओर पिंजरापोल खोलकर अपनी दयाका प्रदर्शन करता है और दूसरी ओर—कलकत्ता, बम्बई एवं अहमदाबादमें शोषितोंकी हड्डियों-पर बड़ी २ हवेलियाँ खड़ी करता है? प्रश्न उठता है कि जीवनमें यह असङ्गति-क्यों? जिस देशमें मनुष्यों-की इतनी दुर्दशा हो; वहाँ 'अहिंसा'के इस प्रदर्शनका क्या मूल्य? क्या भारतीय अहिंसा मनुष्यके प्रति प्रेम करना नहीं सिखाती? जिस देशके पूर्वजोंने चीन और जापानकी क्रूर हिंसक जातियोंको भी अहिंसाका पाठ दिया, जिस महादेशने बुद्ध जैसे अहिंसाके पुजारीको उत्पन्न किया जो आज आधेसे अधिक विश्वका पूज्य है; जिन्होंने अहिंसाके तत्त्वज्ञानको मुक्तिके चरमविंदु तक पहुंचाया, उस देशके मनुष्य दुनियामें सबसे अधिक दरिद्र दीन और पीड़ित हों, यह बात सहसा समझमें नहीं आती? अहिंसा और हिंसाका जो संघर्ष वैदिकयुगमें शुरू हुआ था. इसमें संदेह नहीं उसमें अहिंसाकी विजय हुई? परन्तु अब हिंसा दूसरे रूपमें अपना प्रभाव बढ़ा रही है?

गाँधीजीने उस प्रभावको समझ लिया था और उसके उपचारका भी उन्होंने जतन किया था। अपने जीवनमें उन्होंने जो काम किया वह यह कि अहिंसा को रूढ़ियोंसे मुक्तकर जीवनमें प्रतिष्ठित किया; गाँधीजीकी अहिंसाकी जितनी आलोचना हुई, उतनी शायद ही विश्व-इतिहासमें किसी सिद्धान्तकी हुई हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिंसामें आस्था रखने वालोंने तो उनकी आलोचना की ही, किन्तु अहिंसावादियोंने भी कोई कोर-कसर उठा नहीं रखी, पर वे विचलित नहीं हुए। आजसे कुछ सौ वर्ष पहले यदि गाँधी उत्पन्न हुए होते तो शायद ही आजकी दुनिया यह विश्वास करती कि धरतीपर ऐसा भी व्यक्ति हो सकता है। प्रत्येक अहिंसावादीके सामने—यह प्रश्न साकार हो उठता है कि क्या उसमें वही आत्मा है जिसके बलपर गाँधीजी इस घोर हिंसक और विज्ञानवादी युगमें श्रद्धा और अहिंसापर जीते रहे। जिए ही नहीं, उन्होंने भौतिक शक्तियोंपर विजय प्राप्त की! और एक दिन दुनियाने दुख और आश्चर्यसे सुना कि उनकी विजयी आत्मा, एक विक्षिप्त व्यक्तिकी गोलीका शिकार होगयी। हम जीकर जीते हैं, पर गाँधीजी मरकर भी जिए। अहिंसा व्यापक तत्त्व है, उसे किसी शास्त्रीय मर्यादा में नहीं बाँधा जा सकता; उसपर भी गाँधीजी ऐसे समयमें जन्मे थे जब उन्हें विचित्र समस्याओंका सामना करना पड़ा उन्होंने अहिंसाका अभ्यास शास्त्र-से नहीं जीवनसे किया था। अपना यह जीवन गुजरातकी लोकसंस्कृतिसे बहुत अनुप्राणित है, वह ठीक उस प्रदेशके थे जहाँ आजसे कई हजार वर्ष पहले एक 'राजकुमार' पशुओंके आर्तनादसे विरक्त होकर वनमें तपस्या करने चला गया था; उसका नाम नेमिकुमार था, शुरूमें इसकी चर्चा आचुकी है। ऐसा लगता है कि उनके तपस्वी जीवनका प्रभाव अब भी गुजरातके वायुमण्डलमें व्याप्त है। महापुरुष जीवन-कालमें जनताको प्रभावित करते हैं पर मरनेपर उनके संस्कार—कणकणमें भर जाते हैं? और हजारों सदियों बाद, वे पुनः नये आदर्शोंकी प्रेरणा देते हैं? नेमिकुमारके समय क्षत्रिय-वर्गके आमोद-प्रमोदके लिए—पशुओंकी हत्या होती थी परन्तु गाँधीयुगमें मनुष्यकी दशा पशुओंसे भी अधिक दयनीय हो उठी थी? ब्रिटिश सङ्गीनोंने समूचे देशके चैतन्यको कुचल रक्खा था? उससे उद्धार पाना आसान नहीं था। मैं समझता हूं भारतीय इतिहासमें जितना काम गाँधीके सिरपर आया, उतना किसी दूसरे व्यक्तिपर नहीं। गाँधीजी अहिंसक परम्पराकी ही एक कड़ी थे? इसी दृष्टिसे उनकी अहिंसाकी परख करनी चाहिए?

उनकी मृत्युके बाद पुनः हिंसा और अहिंसाका प्रश्न हमारे सामने हैं। गाँधीवादियोंकी असफलताने इस प्रश्नको और भी उग्र बना दिया है? स्वतन्त्र होनेके बाद देशके सामने अनेक समस्याएँ हैं और यदि उनका हल नहीं हुआ तो निश्चय है कि देशमें पुनः नई व्यवस्थाओंको जारी करनेके लिए क्रान्तियाँ होंगी? गाँधीजी या अहिंसाके नामपर उन—क्रान्तियों को रोका नहीं जा सकता? धीरे धीरे ये शक्तियाँ जोर पकड़ रही हैं। शक्ति पानेके बाद जो शिथिलता और कुण्ठित विचारकता आती है, वर्तमान शासन उससे वञ्चित नहीं है? धार्मिक—अहिंसावादियोंको अहिंसा, मुक्तिपरक-सी हो गई है? वर्तमान जीवनकी समस्याओंसे उनका सम्बन्ध ही दिखाई नहीं देता; क्योंकि उनकी सारी चेष्टाएँ ऐसे प्रश्नोंके सुलझानेमें लगी हुई हैं—जो इस लोकसे परे है? नवयुवकोंके जीवनमें विदेशी विचारधारा घर करती जा रही है; एक बार फिर यह प्रश्न हमारे सामने है कि क्या भारतीय संस्कृति—अपनी सामाजिक व्यवस्थाके लिए —किसी विदेशी कार्कोंको अपनाएगी? व्यापार क्षेत्र-में इस देशके पूँजीपतियोंने सदैव पश्चिमका अनुगमन किया है। उसके विरोधमें गाँधीजीने गृहोद्योग और ग्राम्य सुधारकी बातें रक्खी थीं पर वे मानो उनके महाप्रयाणके बाद ही विदा हो लीं? और अब आर्थिक निर्माण एवं जनताके विकासका प्रश्न हमारे सामने हैं? यदि किसी विदेशी विचारधाराने एक बार हर देशपर आक्रमण कर दिया तो यह निश्चित है कि हमारा, पिछले इतिहासका गौरव नष्ट हो जायगा, उसके बाद भारतीय इतिहासमें अहिंसा कथाकी वस्तु रह जायगी? भावी इतिहास लेखक कहेंगे कि हमने —गाँधीजीको पूजा, पर उनकी धरोहर नहीं बचा सके?

सन्मति निकेतन,
नरिया लङ्का, बनारस

४ सितम्बर ४८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहारक्षेत्रके प्राचीन मूर्ति-लेख

(संग्रहाक—पं० गोविन्ददास जैन, न्यायतीर्थ, शास्त्री)

प्रास्ताविक

सुदूरकालमें बुन्देलखण्डकी भव्य वसुन्धरा बुन्देलों की अमर गाथाओंसे तो गौरवान्वित होती रही, साथमें जैन संस्कृति और उसके अमर साहित्यकी संरक्षणी भी रही। यह मानते हैं कि बुन्देलखण्ड एक समय जैनियोंका अच्छा और प्रधान केन्द्र रहा है, इसका प्रमाण अनेक उस प्राचीन जैनतीर्थ, विशाल जैनमन्दिर, जिनबिम्बोंके शिलालेख और उन शिलालेखोंमें उल्लिखित जैनोंकी विभिन्न अनेक उपजातियाँ आदि हैं।

बुन्देलखण्डमें खजुराहा, देवगढ़, सीरोंन, चन्देरी, थूबौन, पवा, पपौरा, द्रोणगिरि, रेशिंदीगिरि, बाणपुर आदि अनेक प्राचीन पवित्र क्षेत्र हैं। इनमें कई क्षेत्र तो प्रकाशमें आचुके हैं और उनके शिलालेखादि भी प्रकाशित होचुके हैं परन्तु कई क्षेत्र अभी पूर्ण प्रकाशमें नहीं आये और न उनके शिलालेख वगैरह ही प्रकाशमें आये हैं। अहारक्षेत्र भी ऐसे ही क्षेत्रोंमेंसे एक है। जिस प्रकार अनेक प्राचीन मूर्तियों तथा मन्दिरोंके भग्नावशेष देवगढ़ आदि स्थानोंमें पाये जाते हैं—उसी तरह अहारमें भी वे यत्र तत्र पाये जाते हैं। इनपर उत्कीर्ण शिलालेखोंसे प्रतीत होता है कि श्रीअहारकी प्राचीन बस्तीका नाम 'मदनेशसागरपुर' था। इसके तत्कालीन शासक श्रीमदनवर्म्म थे—जो चन्देलोंमें प्रमुख और प्रभावशाली एवं यशस्वी *चन्देल नरेश थे। विक्रमकी ग्यारवीं-तेरहवीं सदीके* शिलालेखोंमें जो अहारजीमें विद्यमान हैं मदनेशसागरपुरका नाम स्पष्टतया आता है। श्रीअहारके पास जो विशाल सरोवर बना हुआ है वह आज भी 'मदनसागर' के नामसे विश्रुत है। इससे यह जान पड़ता है कि ग्यारहवीं सदीमें यहाँ चन्देलनरेश मदनवर्मका शासन (राज्य) था और अहारका उस समय 'मदनेशसागरपुर' नाम था।

यहाँकी मूर्तियोंके शिलालेखोंसे पता चलता है कि खण्डेलवाल, जैसवाल, मेडवाल, लमेचू, पौरपाट, गृहपति, गोलापूर्व, गोलाराड, अवधपुरिया, गर्गराट आदि अनेक जातियोंका अस्तित्व था। इन सभी जातियोंकी प्रतिष्ठित मूर्तियाँ यहाँ विद्यमान हैं।

यहाँ वि० सं० ११२३से लेकर वि० सं० १८६६ तककी प्राचीन मूर्तियाँ पाई जाती हैं। अतः ज्ञात होता है कि बीचकी एक-दो सदियोंको छोड़कर बराबर १२वीं सदीसे लेकर १६वीं सदी तक विम्ब प्रतिष्ठाएँ यहाँ होती रहीं। मूल नायक भगवान् शान्तिनाथकी प्रतिविम्बसे जो विक्रमकी तेरहवीं सदीमें प्रतिष्ठित हुई है, १०० वर्ष पहलेकी यहाँ प्रतिमाएँ पाई जाती हैं।

यहाँ भट्टारकोंकी शताब्दियों तक गद्दियाँ रही हैं ऐसा शिलालेखोंसे मालूम होता है। यहाँके तत्कालीन एक प्रभावपूर्ण अतिशयने तो अहारके नामको आज तक अमर रक्खा है। कहते हैं कि यहाँ एक धर्मात्मा व्यापारी (सम्भवतः जैनश्रेष्ठी प्राणाशाह) का रांगा, जो बहुत तादादमें था, चाँदी हो गया था। उसने अपने उस तमाम द्रव्यको चैत्य-चैत्यालय तथा धर्मायतनोंके निर्माणमें ही लगा दिया। तभीसे यहाँ धार्मिक मान्यताओंके साथ अनेक स्तूपोंके रूपमें और भी अनेक मन्दिर निर्माण कराये गये जिनकी निश्चित संख्या बताना असंभव है।

खुदाई करनेपर यहाँपर उत्तरोत्तर बहुत तादादमें खण्डित मूर्तियाँ भूगर्भसे प्राप्त हो रही हैं। जिनमें अनेकोंकी आसनें शिलालेखोंसे अङ्कित हैं। अनेकोंके आङ्गोपाङ्ग खण्डित हो चुके हैं। मूर्तियाँ अनेक वर्षों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तक भूगर्भमें निहित रहीं फिर भी उनकी पॉलिश ज्योंकी त्यों चमदकार है।

मूर्तियोंके प्रतिष्ठा लेखोंसे पता चलता है कि उस समय संस्कृतका अच्छा प्रचार था। प्रशस्तियाँ प्रायः संस्कृतमें ही लिखी जाती थीं। लिपि चाहे प्राचीन हो या अर्वाचीन।

श्री अहारक्षेत्रमें जो शिलालेखयुक्त मूर्तियाँ खण्डित और अखण्डित रूपमें उपलब्ध हैं उन्हींके शिलालेखोंका यह महत्वपूर्ण संग्रह पाठकोंके सामने प्रस्तुत है। कई लेख घिसने तथा आसनोंके टूटनेसे पूरे २ नहीं पढ़े जा सके हैं, उसके लिये लेखक क्षम्य है।

इसमें जहाँ संशोधन प्रतीत हो उसे विद्वज्जन मुझे सूचित करनेकी कृपा करेंगे। मैं उनका बड़ा आभारी होऊँगा। यदि इस संग्रहसे पाठकोंको थोड़ा भी लाभ पहुँचा तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

शिला-लेख (मूर्त्तिलेख)

मूर्ति देशी पाषाणसे निर्मित है। पॉलिश मटियाले रङ्गकी चमकदार है। करीब २२ फुटकी शिलापर १८ फुट ऊँची यह विशालकाय मूर्ति खड्गासन सुशोभित है। आसनके दोनों ओर दो यक्षिणियोंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। जिनके अङ्ग वगैरह खण्डित हो चुके हैं। दोनों ओर दो इन्द्र खड़े हैं। मूर्तिका दाँया हाथ टूट गया था वह दूसरे पाषाणसे पुनः बनाया गया है। उसपर पॉलिश भी किया गया है परन्तु पहले पॉलिशसे नहीं मिल सका है। नासिका, पैरोंके अंगूठे आदि उपाङ्ग भी पुनः जोड़े गये हैं। आसनपर दोनों ओर दो हिरण खड़े हैं। उसके नीचे शिलालेख है जो करीब ४ इञ्च लम्बा और ९ इञ्च चौड़ा है। शिलालेख इस प्रकार है—

लेख नम्बर १

ॐ नमो वीतरागाय ॥ गृहपतिवंशसरोरुह सहस्ररश्मिः सहस्रकूटं यः। बाणपुरे व्यधितासीत् श्रीमानिह देवपाल इति ॥१॥ श्रीरत्नपाल इति तत्तनयो वरेण्यः। पुण्यैक मूर्त्तिरभवद् वसुहाटिकायाम्। कीर्तिर्जगत्रयपरिभ्रमणश्रमार्त्ता यस्य स्थिराजनि जिनायतनाच्छलेन ॥२॥ एकस्तावदनूनबुद्धिनिधिना श्रीशान्ति चैत्यालयो दृष्ट्यानन्दपुरे परः परनरानन्दप्रदः श्रीमता। येन श्रीमदनेशसागरपुरे तज्जन्मनो निर्म्मिमे। सोऽयं श्रेष्ठिवरिष्ठगल्हण इति श्रीरल्हणाख्यादभूत् ॥३॥ तस्मादजायत कुलाम्बर पूर्णचन्द्रः श्रीजाहडस्तदनुजोदयचन्द्रनामा। एकः परोपकृतिहेतुकृतावतारो धर्मात्मकः पुनरमोघसुदानसारः ॥४॥ ताभ्यामशेषदुरितौघशमैकहेतुं निर्म्मापितं भुवनभूषणभूतमेतत् श्रीशान्ति चैत्यमिति नित्यसुखप्रदात्। मुक्तिश्रियो वदनवीक्षणलोलुपाभ्याम् ॥५॥ सम्वत् १२३७ मार्गसुदी ३ शक्रे श्रीमत्परमर्द्दिदेवविजयराज्ये। चन्द्रभास्करसमुद्रतारका यावदत्र जनचित्तहारकाः। धर्मकारिकृतशुद्धकीर्त्तनं तावदेवजयतात् सुकीर्त्तनम्। वल्हणस्य सुतः श्रीमान् रूपकारोमहामतिः। पापटोवास्तुशास्त्रज्ञस्तेन बिम्बंसुनिर्मितम्।

भावार्थः—वीतरागके लिये नमस्कार (है) जिन्होंने बानपुरमें एक सहस्रकूट चैत्यालय बनवाया. वे गृहपतिवंशरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्यके समान श्रीमान् देवपाल यहाँ (इस नगरमें) हुए।

श्लोक २—उनके रत्नपाल नामक एक श्रेष्ठ पुत्र हुए जो बसुहाटिकामें पवित्रताकी एक (प्रधान) मूर्त्ति थे। जिसकी कीर्त्ति तीनों लोकोंमें परिभ्रमण करनेके श्रमसे थककर इस जिनायतनके बहाने ठहर गई।

श्लोक ३—श्रीरल्हणके श्रेष्ठियोंमें प्रमुख, श्रीमान् गल्हणका जन्म हुआ जो समग्रबुद्धिके निधान थे और जिन्होंने नन्दपुरमें श्रीशान्तिनाथ भगवानका एक चैत्यालय बनवाया था; और इतर सभी लोगोंको आनन्द देनेवाला दूसरा चैत्यालय अपने जन्मस्थान श्रीमदनेशसागरपुरमें बनवाया था।

श्लोक ४—उनसे कुलरूपी आकाशके लिये पूर्णचन्द्रके समान श्रीजाहड़ उत्पन्न हुए। उनके छोटे भाई उदयचन्द्र थे। उनका जन्म प्रधानतासे परोपकार के लिये हुआ था। वे धर्मात्मा और अमोघदानी थे।

श्लोक ५—मुक्तिरूपी लक्ष्मीके मुखावलोकनके लिये लोलुप उन दोनों भाइयोंने समस्त पापोंके क्षयका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कारण, पृथ्वीका भूषण-स्वरूप और शाश्वतिक महान् आनन्दको देनेवाला श्रीशान्तिनाथ भगवानका यह प्रतिबिम्ब निर्मापित किया।

संवत् १२३७ अगहन सुदी ३, शुक्रवार, श्रीमान् परमर्द्धिदेवके विजय राज्यमें—

श्लोक ६—इस लोकमें जब तक चन्द्रमा, सूर्य, समुद्र और तारागण मनुष्योंके चित्तोंका हरण करते हैं तब तक धर्म्मकारीका रचा हुआ सुकीर्त्तिमय यह सुकीर्त्तन विजयी रहे।

श्लोक ७—वाल्हणके पुत्र महामतिशाली मूर्त्ति-निर्माता और वास्तु-शास्त्रके ज्ञाता श्रीमान् पापट हुए, उन्होंने इस प्रतिविम्बकी सुन्दर रचना की।

नोट—इस लेखकी प्रथम पंक्तिमें बाणपुरके जिस सहस्रकूट चैत्यालयका उल्लेख आया है वह वहाँ अब भी विद्यमान है। यद्यपि उसकी भी अधिकांश मूर्त्तियाँ खण्डित हो चुकी हैं तथा वे सभी मूर्त्तियाँ और चैत्यालय उत्कृष्ट शिल्पकलाके उत्तम आदर्श हैं।

दूसरे श्लोकमें जो "बसुहाटिकायां" पद आया है इससे विदित होता है कि यह किसी प्रसिद्ध नगरीका नाम रहा होगा।

इस श्लोकमें वर्णित नन्दपुर भी इसी नगरके करीब होना चाहिये जो उस समय प्रसिद्ध था।

तथा "मदनेशसागरपुर" जो पद आया है उससे ज्ञात होता है कि वह सम्भवतः इसी स्थान—अहार—का नाम रहा होगा। यहाँके तालाबको आज भी 'मदनसागर' कहते हैं।

यह मूर्ति क़रीब १३ फुटकी शिलापर क़रीब ११ फुट ऊँची खड्गासन है। मूर्त्तिके कुछ उपाङ्ग छिल गये हैं। नासिका, उपस्थ इन्द्रिय तथा पैरोंके अँगूठे टूट गये हैं। बाँया हाथ पुनः जोड़ा गया है। शिलालेखका बहुभाग टूट गया है। भावको लेकर पूर्त्ति की है। चिह्न बकरेका है। पालिश मटियाले रङ्गकी है।

लेख नम्बर २

ॐ नमो वीतरागाय। बभूव रामा नयनाभिरामा, श्रीरल्हणस्येह महेश्वरस्य। गंगेवगंगागत पंकसंगा, जड़ाशयानेव परं नवोढ़ा ॥१॥ गार्हस्थधर्मे नितरां ग्रहणप्रवीणा, निरंतरप्रेमनिधानधात्री। पुत्रत्रयं मंगलकार्यसूता, येषां च कीर्त्तिरिव सत्वरधर्मवृत्तिः ॥२॥ तेषां गांगेयकल्पः प्रथमतनुभवः पुण्यमूर्त्तिः प्रसूतः। स्कन्दो भूतेशमेवागुणवतिरुदयादित्यनामापरस्य। ख्याताधर्मे कुमुदशशिलघुभ्रातृयुग्मेवियुक्ते, संसारासारतां ....हिवुद्धिः ॥ ३ ॥ वित्तानि विद्युदिव सत्वर गत्वराणि, राजीविनी जलसामनि व जीवतानि। तुल्यानि ....गणस्यहियौवनानि.......................................॥४॥

भावार्थः—वीतरागके लिये नमस्कार हो। श्रीरल्हणके महेश्वरकी तरह पापोंसे रहित नवविवाहित नयनोंको प्यारी गङ्गा नामकी स्त्री हुई।१॥ जो हमेशा गृहस्थ-धर्मको ग्रहण करनेमें चतुर तथा हमेशा प्रेमकी निधानभूत थी। उसने मङ्गलरूप तीन पुत्र पैदा किये। जिनकी कीर्त्तिके समान जल्दी धर्ममें प्रवृत्ति हुई।२॥ उन तीनों पुत्रोंमेंसे पुण्यकी मूर्तिके समान महादेवको कार्त्तिकेयके मानिन्द पहला पुत्र पैदा हुआ। उसने अपने छोटे दो भाइयोंके वियोग होनेसे तमाम संसार की असारताको जाना। तथा दान और धर्ममें है बुद्धि जिसकी ऐसे उसने धनको बिजलीके समान जल्दी नाशवान जाना। तथा जीवनको जल-बुदबुदेके समान माना। तथा बादलोंकी चञ्चलताके समान यौवनको माना। फिर तमाम धनको निज हितमें लगाकर ही धन्य माना।४॥

यह क़रीब ६ इञ्चका मटियाले पाषाणका एक भग्नावशेष मात्र है। इसकी पालिश बहुत कुछ शान्तिनाथकी मूर्त्तिसे मिलती है। चिह्नकी जगह कुछ अस्पष्ट निशान है जो अच्छी तरह नहीं देखा जा सकता। शिलालेखका बहुत भाग टूट गया है। कुछ शब्द पढ़े गये जो नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

लेख नम्बर ३

सं० १२३७ मार्ग सुदी ३ शुक्रे साहु श्रीपाल सुत साहु गेल्हण.....................। बाक़ी हिस्सा नहीं है।

यह मूर्त्ति मन्दिर नं० १ के प्रांगणकी दीवारमें खचित है। मूर्त्तिका शिर धड़से अलग है, परन्तु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चूनासे पुनः जोड़ा गया है। मूर्त्ति क़रीब १।। फुट पद्मासन है। पाषाण काला है। चिह्नको देखकर पुष्पदन्तकी मालूम होती है। कुछ शिलालेखका हिस्सा दीवारमें बन्द है, अतः पूरा नहीं पढ़ा जा सका।

लेख नम्बर ४

सं० १२०६ वैशाख सुदी १३ श्रीमदनसागरपुरे मेडवालान्वये साहु कोकासुत साहु कारकम्प पडिमा कारपिता ।।

भावार्थः—मेडवाल जातिभूषण साहु कोका तथा पुत्र कारकम्पने सं० १२०६के वैशाख सुदी १३के दिन प्रतिमा बनवाई।

मूर्त्ति नं० ४की भाँति मन्दिर नं० १के प्रांगणमें है, शिर धड़से अलग है, पुनः जोड़ा गया है। मूर्त्तिकी हथेली मय अँगुलियोंके छिल गई है। चिह्न बन्दरका है। २ फुटकी अवगाहना है। पाषाण काला तथा चमकीला है। मूर्त्ति पद्मासन है।

लेख नम्बर ५

सं० १२१० वैशाख सुदी १३ पौरपाटान्वये साहु टूंदू-भार्या यशकरी तत्सुत साढू भार्या दिल्हीनलक्ष्मी तत्सुत पोपति एते प्रणमन्ति नित्यम् ।।

भावार्थः—पौरपाटान्वयमें पैदा होने वाले साहु टूंदू उनकी धर्मपत्नी यशकरी उनका पुत्र साढू उसकी पत्नी दिल्हीलक्ष्मी उसके पुत्र पोपति ये सब इस विम्बकी सं० १२१०के वैशाख सुदी १३को प्रतिष्ठा कराकर सदा उसे नमस्कार करते हैं।

यह मूर्त्ति भी मन्दिर नं० १के प्रांगणमें दीवारमें खचित है। शिर धड़से अलग है परन्तु पुनः चूनासे जोड़ दिया गया है। दाँयें हाथकी अँगुलियाँ नहीं हैं। चिह्न शङ्खका है। ३ फुट ऊँची, पद्मासन काले पाषाण की है। आसन विशाल है।

लेख नम्बर ६

सं० १२१६ माघसुदी १३ खडि[खंडे]लवालान्वये साहु सल्हण तस्य भार्या माम तेन कर्मक्षयार्थ प्रतिमा कारापिता। तस्य सुत महिपति प्रणमन्ति नित्यम् ।।

भावार्थः—सं० १२१६के माघ सुदी १३के दिन खण्डेलवाल वंशमें पैदा होनेवाले साहु सल्हण उनकी धर्मपत्नी मामने प्रतिमा बनवाई। उनका पुत्र महीपती और वे उसे प्रतिदिन नमस्कार करते हैं।

यह मूर्ति भी नं० १ मन्दिरके चौककी दीवारमें चिन दी गई है। शिर धड़से अलग है। चूनासे पुनः जोड़ दिया गया है। दोनों हाथोंकी अँगुलियाँ नहीं हैं। चिह्न बैलका है मूर्ति चमकदार काले पाषाणकी है। आसन विशाल है।

लेख नम्बर ७

सं० १२१३ श्रीमाधुन्वये साहुश्रीयशकरसुत साहुश्री-यशराय तस्य पुत्रैनः—कमल यशधरी दार्योराउ प्रणमन्ति नित्यम् ।।

भावार्थः—सं० १२१३में (प्रतिष्ठित की गई इस मूर्तिको) माधुवंशमें पैदा होनेवाले शाह यशकर उनकी धर्मपत्नी उनके पुत्र यशराय उनके पुत्र तीन हुये—कमल यशधर-दार्योराउ, ये सब प्रतिदिन प्रणाम करते हैं।

यह मूर्ति भी मन्दिर नं० १ के चौकमें खचित है। शिर धड़से अलग होनेपर पुनः जोड़ा गया है। दोनों हाथोंके पहुँचा मय अँगुलियोंके नहीं हैं। दाएँ पैरके टकनोंसे नीचेका हिस्सा नहीं है (छिल गया है) तथा बाएँ पैरकी जंघा छिल गई है। चिह्न चन्द्रका है। ३ फुट अवगाहना है। आसन पद्मासन है। काले पाषाण की है।

लेख नम्बर ८

सं० १२१० वैशाख सुदी १३ लामेचूकान्वये साहु छते तद्भार्या बप्रा तयोः सुत नायक कमलबिन्द तद्भार्या साल्ही सुत लधुदेव एते प्रणमन्ति नित्यम् ।।

भावार्थः—लमेचूकुलमें पैदा होनेवाले साहु छते उनकी पत्नी बप्रा उन दोनोंके पुत्र नायक कमलबिन्द उनकी पत्नी साल्ही पुत्र लधुदेव ये सं० १२१० वैशाखसुदी १३को विम्बप्रतिष्ठा कराकर प्रतिदिन प्रणाम करते हैं।

यह मूर्ति भी मन्दिर नं० १ के चौकमें शिर जोड़ कर खचित है। हथेली छिल चुकी है। चिह्न कुछ नहीं ज्ञात होता है। करीब ३ फुट ऊँची है, पद्मासन है। काले पाषाणसे बनी है।

लेख नम्बर ६

सं० १२०६ वैशाख सुदी १३ गृहपत्यन्वये साहु अल्ह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तस्य पुत्र मातन तस्य भगिनी आल्ही एते नित्यं प्रणमन्ति।

भावार्थः—गृहपति (गहोई) वंशोत्पन्न साह अल्ह उसके पुत्र मातन उसकी बहिन आल्ही ये सं० १२०९ वैशाख सुदी १३को विम्बप्रतिष्ठा कराकर प्रतिदिन प्रणाम करते हैं।

मूर्त्तिके दोनों तरफ इन्द्र खड़े हैं। कुछ हिस्से छिल गये हैं जैसे—दाढ़ी-नासिका-अंगुली। बाकी सर्वाङ्ग सुन्दर है। करीब ५ फुट अवगाहनाको लिये हुए खड्गासन है। पाषाण काला तथा चमकदार है। चिह्न वगैरह कुछ नहीं है। शिलालेख घिस गया है। कुछ हिस्सा पढ़ा जा सका जो इस प्रकार है—

लेख नम्बर १०

सं० १२०३ माघ सुदी १३ साहु जगचन्द्र पुत्र सखवंत ....।

भावार्थः—सं० १२०३ माघसुदी १३को साह जगचन्द्र और उनके पुत्र सुखवंत आदिने बिम्ब प्रतिष्ठा कराई।

यह मूर्त्ति भी मन्दिर नं० १ के चौकमें चिनी है। शिर धड़से अलग होनेपर भी जोड़ा गया है। दोनों हाथोंके पहुँचे छिल गये हैं। बैलका चिह्न है। करीब १॥ फुटकी अवगाहना है, आसन पद्मासन है। पाषाण काला है।

लेख नम्बर ११

सं० १२०३ माघसुदी १३ गोलापूर्वान्वये साहु भावदेव भार्या जसमती पुत्र लक्ष्मीवन प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः—गोलापूर्ववंशमें पैदा होनेवाले शाह भावदेव उनकी धर्मपत्नी जसमती पुत्र लक्ष्मीवनने १२०३ माघ सुदी १३ को प्रतिष्ठा कराकर सब प्रति-दिन प्रणाम करते हैं।

यह मूर्त्ति भी मन्दिर नं० १ के चौकमें चिनी है। शिर धड़से अलग होनेपर पुनः जोड़ दिया गया है। चिह्न कुछ नहीं है। करीब १॥ फुट ऊँची पद्मासन काले पाषाणकी है।

लेख नम्बर १२

सं० १२३७ मार्गसुदी ३ शुक्रे गोलाराडान्वये साहु श्रीदेवचन्द्र सुत दामर भार्या त्रपिली प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः—गोलाराड वंशोत्पन्न शाह श्रीदेवचन्द्र उनके पुत्र दामर उनकी पत्नी त्रपिली सं० १२३७के अगहन सुदी ३ शुक्रवारको प्रतिष्ठा कराकर प्रतिदिन प्रणाम करते हैं।

यह मूर्त्ति भी मन्दिर नं० १के चौकमें विराजमान है। दोनों ओर इन्द्र खड़े हैं। सिर्फ नासिका छिल गई है। बाकी सर्वाङ्ग सुन्दर है। चिह्न हिरणका है। करीब ३। फुट ऊँची खड्गासन है। काले पाषाणसे निर्मित है।

लेख नम्बर १३

सं० १२१६ माघसुदी १३ शुक्रे जैसवालान्वये साहु श्रीधण तद्भार्या सलषा तस्य पुत्र साहु आमदेव —तथा कामदेव सुत लखमदेव तस्य गृ येदेवचन्द्र—वाल्हू सांति—हाल प्रभृतयः प्रणमन्ति नित्यम्। मंगलं। महाश्रीः॥

भावार्थः—जैसवाल वंशमें पैदा होनेवाले शाह घण उनकी पत्नी सलषा उसके पुत्र शाह आमदेव तथा कामदेव उसके पुत्र शाह लखमदेव उसके गृहमें पैदा होनेवाले देवचन्द्र–वालू–सांति–हालू प्रभृतिने सं० १२१६ माघ सुदी १३ शुक्रवारके दिन बिम्ब प्रतिष्ठा कराई।

यह मूर्त्ति भी मन्दिर नं० १के चौकमें शिर जोड़ कर चिन दी गई है। बाकी सर्वाङ्ग सुन्दर है। चिह्न हाथीका है। २। फुट ऊँची पद्मासन है। पाषाण काला है। लेखका कुछ हिस्सा छिल गया है।

लेख नम्बर १४

.... साहु श्रीमल्हण तस्य सुत वाकु तस्य सुत लाल तस्य भार्या नाधर तयोः सुत वाल्हराउ–आमदेव अजितं जिनं प्रणमन्ति नित्यम्। सं० १२०३ माघ सुदी १३।

भावार्थः—शाह श्रीमल्हण उनके पुत्र वाकु उनके पुत्र लाल उसकी पत्नी नाधर उन दोनोंके पुत्र दो—वाल्हराय–आमदेव अजित जिनको प्रतिदिन प्रणाम करते हैं। सं० १२०३ माघ सुदी १३को प्रतिष्ठा हुई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह मूर्त्ति भी मन्दिर नं० १के चौककी दीवारमें खचित है। मूर्त्तिका शिर धड़से अलग होनेपर पुनः जोड़ दिया है। चिह्नकी जगह एक कमल है। जो किसी कलाका द्योतक है। २। फुट पद्मासन है। पाषाण काला है।

लेख नम्बर १५

सं० १२०९ आषाढ़ वदी ८ गुरौ जयसवालान्वये साहु श्रीवाहड़ तत्सतौ सोमपति मल्हणौ तथा साहु श्री नमिचन्द्र तत्सुतौ माहिल-पंडित देल्हणौ तथा साहु श्रीरत तत्सुताः-सीद-भावु-कल्हणाः एते नित्यं प्रणमन्ति ।

भावार्थः—जैसवालवंशमें पैदा हुए शाह श्रीवाहड़ उनके पुत्र दो—सोमपति और मल्हण। तथा शाह श्रीनमिचन्द्र उनके पुत्र दो—माहिल पंडित तथा देल्हण। तथा शाह श्रीरत उनके पुत्र तीन—सीद, भावु और कल्हण इन्होंने सं० १२०९के आषाढ़ वदी ८ गुरुवारको प्रतिष्ठा कराई। ये सब सदा प्रणाम करते हैं।

यह मूर्त्ति भी मन्दिर नं० १के चौकमें शिर जोड़ कर चिन दी गई है। चिह्न शेरका है। २। फुटकी ऊँची पद्मासन है। काला पाषाण है। बाकी सर्वाङ्ग सुन्दर है।

लेख नम्बर १६

सं० १२३७ मार्ग सुदी ३ शुक्रे ।

श्रीवीरदेव इत्यासीत्, खण्डेलान्वयभास्करः ।
प्रतिद्यावार्यतेयोभूत्तत्पुत्रो उपशमक्षमः ॥
कमलानिवास वसतिः, कमलदलाक्षः प्रसन्नमुखकमलः ।
बुधकमल-कमलबन्धुः विकलंकः कमलदेव इति ॥
श्रीवीरवर्द्धमानस्य विम्बं तत्पुण्यवृद्धये ।
कारितं केशवेनेदं तत्पुत्रेण निर्मलम् ॥
साहु श्रीमामटस्याऽपि पुत्रो देघहरानिघः ।
तेनापि कारितं चैत्यं तर्वादेवात्र वेतसा ।

भावार्थः—खण्डेलवाल वंशोत्पन्न तद्वशके लिये सूर्यके समान वीरदेव हुए। जो बड़े बुद्धिमान थे। उनके पुत्र अनुपमेय था। जो लक्ष्मीका निवास था, जिसकी आँखें कमलपत्रके समान थीं। जिसका मुख-प्रसन्न था। और जो पंडितरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिये सूर्य था। और जो निर्मल था—ऐसे कमलदेव हुए। उनके पुत्र केशवने पुण्य-वृद्धिके लिये श्रीवीर वर्द्धमान भगवानकी प्रतिमा बनवाई।

यह मूर्त्ति भी मन्दिर नं० १ के चौकमें चिनी है। शिर धड़से अलग है। पुनः जोड़ा गया है। बाकी सर्वाङ्ग सुन्दर है। करीब २ फुट पद्मासन है। पाषाण काला है। चिह्न दण्डका है।

लेख नम्बर १७

सं० ११९९ चैत्र सुदी १३ गर्गराटान्वये साहु वाक तस्य सुत साह लालसाल्हण नाइव तस्य सुत साहु मालु-राज सोमदेव एते नित्यं प्रणमन्ति ।

भावार्थः—गर्गराट वंशमें पैदा होनेवाले शाह वाक उनके पुत्र शाह लालसाल्हण नाइव उसके पुत्र दो—मालुराज और सोमदेवने ११९९ के चैत्र सुदी १३को विम्ब प्रतिष्ठा कराई। ये सब सदा प्रणाम करते हैं।

यह मूर्त्ति भी मन्दिर नं० १ के चौकमें शिर जोड़ कर चिन दी गई है। बाकी सर्वाङ्ग सुन्दर है। चिह्न शेर प्रतीत होता है। १॥ फुटकी ऊँची पद्मासन है। पाषाण काला है।

लेख नम्बर १८

कुटकान्वये पंडितश्रीलक्ष्मणदेवस्तस्य शिष्य श्रीमदार्यदेवः तथा आर्यिका ज्ञानश्री-साहेल्लिकामामातिणी एतया जिनविम्बं प्रतिष्ठापितम् ॥ सं१२१३ ।

भावार्थः—कुटकवंशमें पैदा होनेवाले पंडितश्री लक्ष्मणदेव उनके शिष्य श्रीमदार्यदेव तथा आर्यिका ज्ञानश्री-सहेल्लिका-मामातिणी इन्होंने सं० १२१३में जिनविम्बकी प्रतिष्ठा कराई।

यह मूर्त्ति मन्दिर नं० १के बाहरी जीनाके बाईं तरफ एक छोटी कुटीमें विराजमान है। दोनों तरफ इन्द्र खड़े हैं। आसनके नीचे देवियाँ बैठी हैं। दाईं तरफका आसन टूट जानेसे देवीकी मूर्ति भी टूट गई है। मूर्ति प्रायः अखण्डित है। सिर्फ घुटनोंपर तथा नासिका तथा दाढ़ीका हिस्सा छिल गया है। दाएँ हाथका अंगूठा तथा पासकी अंगुली टूट गई है।

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

बायें हाथके ऊपरका हिस्सा छिल गया है। करीब ६ फुटकी खड्गासन है। काला पाषाण है। चिह्न हिरणका है। लेख घिस गया है। इस लिये पूरा पढ़ा नहीं जाता।

लेख नम्बर १९

सं० १२१६ माघसुदी १३ शुक्रदिने कुटकान्वये पंडित स्रीमंगलदेव तस्य शिष्य भट्टारक पद्मदेव तत्पट्टे.........

....

....

भावार्थः—कुटकवंशोत्पन्न पंडित श्रीमंगलदेव उनके शिष्य भट्टारक पद्मदेव उनकी पट्टावलीमें हुए .... ने सं० १२१६ के माघ सुदी १३ शुक्रवारके दिन विम्ब प्रतिष्ठा कराई।

मूर्त्तिके दोनों तरफ इन्द्र खड़े हैं। मूर्त्ति घुटनोंके पाससे बिल्कुल टूट गई है। दोनों हिस्से जोड़कर मन्दिर नं० १के चबूतरेपर लिटा दी गई है। चिह्न वगैरह कुछ नहीं हैं। दो व्यक्तियोंने मिलकर प्रतिष्ठा कराई है ऐसा लेखसे विदित होता है। इसी दिन इसी अवगाहनाकी ३ मूर्त्तियाँ और भी उक्त दोनों व्यक्तियोंने प्रतिष्ठित कराई हैं। करीब ६ फुटकी खड्गासन है। पाषाण काला है।

लेख नम्बर २०

सं० १२०३ माघसुदी १३ जैसवालान्वये साहु खोने भार्या यशकरी सुत नायक साहुपाल—वील्हे-माल्हा-परमे-महीपति सुत श्रीरा प्रणमन्ति नित्यम्।

सं० १२०३ माघसुदी १३ जैसवालान्वये साहु बाहड़ भार्या शिवदेवि सुतसोम-जनपाहुड-लाखू-लोले प्रणमन्ति नित्यम् ॥

भावार्थः—जैसवालवंशोत्पन्न शाह खोने उनकी धर्मपत्नी यशकरी उनके पुत्र नायक साहुपाल्ह वील्हे-माल्हा-परमे-महीपति. ये पाँच तथा महीपतिके पुत्र श्रीराने सं० १२०३ माघ सुदी १३ को विम्ब-प्रतिष्ठा कराई।

सं० १२०३ माघ सुदी १३ को जैसवालवंशमें पैदा होनेवाले शाह वाहड़ उनकी धर्मपत्नी शिवदेवि उनके पुत्र चार—सोम, जनपाहुड़, लाखू, लाले इन्होंने प्रतिविम्ब प्रतिष्ठा कराई।

मूर्त्तिका शिर पूरा खण्डित है। करीब १॥ फुटकी पद्मासन है। काले पाषाणकी बनी हुई है। चिह्न शङ्खका है। शिलालेख स्पष्ट दीखता है। मूर्त्तिकी पॉलिश चमकदार है।

लेख नम्बर २१

सं० १२२८ फागुनसुदी १२ जैसवालान्वये साहु देन्द्र भ्रात ईल्ह सुत बाल्ह सुत कुल्हा वीकलोहट वाल्ह सुत आसवन प्रणमन्ति नित्यम् ॥

भावार्थः—जैसवाल वंशोत्पन्न साहु देन्द्र उनके भाई ईल्ह उनके पुत्र वाल्हू उनके पुत्र कुल्हा वीक-लोहट-वालू उनके पुत्र आसवन इन्होंने वि० सं० १२२८के फागुन सुदी १२को विम्ब-प्रतिष्ठा कराई।

मूर्त्तिका शिर नहीं है। तथा दोनों हाथ भी नहीं हैं। सिर्फ धड़मय आसनके रूपमें उपलब्ध है। चिह्न वगैरह कुछ नहीं है लेख स्पष्ट है। करीब १॥ फुटकी पद्मासन है। काला पाषाण है। पॉलिश चमकदार है।

लेख नम्बर २२

सं० १२३७ मार्गसुदी ३ शुक्रे गोलापूर्वान्वये साहु यशाहै पुत्र ऊदे तथा वीलहण एते श्रीनेमिनाथं नित्यं प्रणमन्ति। मंगलं महाश्री ॥

भावार्थः—गोलापूव-वंशोत्पन्न शाह यशाहै उनके पुत्र ऊदे तथा वीलहण ये श्रीनेमिनाथको सं० १२३७के अगहनसुदी ३ शुक्रवारको प्रतिष्ठा कराकर नित्य प्रणाम करते हैं।

मूर्त्तिका शिर और दोनों हाथ नहीं हैं। सिर्फ धड़ और आसन विद्यमान है। आसनपर लेखके अतिरिक्त कुछ नहीं है। चिह्न बैलका है। करीब डेड़ फुट ऊँची पद्मासन है। पाषाण काला है।

लेख नम्बर २३

संवत् १२१४ फागुन वदी ४ सोमे अवधपुरान्वये ठक्कुर श्रीनान्न सुत ठक्कुर नीनेकस्य भार्या पाल्हणि नित्यं प्रणमन्ति कर्मक्षयाय।

भावार्थः—अवधपुरिया वंशोत्पन्न ठक्कुर नान्न

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

उनके पुत्र ठक्कुर नीनेक उनकी धर्मपत्नी पाल्हणिने सं० १२१४ के फागुन वदी ४ सोमवारको प्रतिष्ठा कराई। कर्मोंके क्षयके लिये प्रतिदिन नमस्कार करते हैं।

मूर्त्तिका शिर नहीं है। बाकी तमाम अङ्गोपाङ्ग विद्यमान हैं। चिह्न शेरका है। हथेली कुछ छिल गई है। करीब १॥ फुट ऊँची पद्मासन है। पाषाण काला है।

लेख नम्बर २४

संवत् १२०९ अषाड़ वदी ४ शक्रे जैसवालान्वये नायक श्रीसाहुकसस प्रतिमा गोठिता।

भावार्थः—जैसवालवंशोत्पन्न नायक श्रीसाहु कससने सम्बत् १२०९ के अषाढ़ वदी ४ शुक्रवारको प्रतिमा प्रतिष्ठा कराई।

मूर्त्तिका शिर और दोनों हाथोंके पहुँचे नहीं हैं। बाकी हिस्सा ज्योंका त्यों उपलब्ध है। चिह्न शेरका है। करीब १॥ फुट ऊँची पद्मासन है। पाषाण काला है।

लेख नम्बर २५

संवत् १२१३ गोलापूर्वान्वये साहु साल्ह भार्या सलषा तयोः सुत पोखन एते प्रणमन्ति नित्यम्। आषाड़सुदी २।

भावार्थः—गोलापूर्ववंशोत्पन्न शाह साल्ह उसकी धर्मपत्नी सलषा इन दोनोंके पुत्र पोखन इन्होंने संवत् १२१३के अषाढ़ सुदी २को प्रतिबिम्ब पधराई। ये नित्य प्रणाम करते हैं।

मूर्त्तिका शिर और दोनों हाथोंके अतिरिक्त बाकी धड़ उपलब्ध है। चिह्नकी जगह अष्टदल कमल है। करीब १॥ फुट ऊँची पद्मासन है। पाषाण काला है।

लेख नम्बर २६

संवत् १२१६ फागुन वदी ८ सोमदिने सिद्धान्तश्री सागरसेन आर्यिका जयश्री रिषिणी रतनरिषि प्रणमन्ति नित्यम्। जैसवालान्वये साहु बाहेडभार्या सिवदे पुत्री सावनी मालती पदमा-मदना प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः—संवत् १२१६के फागुन वदी ८ सोम-को सिद्धान्तश्री सागरसेन तथा आर्यिका जयश्री और श्रीरतनऋषिने बिम्ब-प्रतिष्ठा कराई।

तथा जैसवाल वंशोत्पन्न बाहड़ उनकी धर्मपत्नी सिवदे उनकी पुत्री-सावनी-मालती-पदमा-मदनाने उक्त सम्वत्‌में उक्त महात्माओंके आदेशसे अपने द्रव्यका सदुपयोग किया।

मूर्त्तिके आसनके अतिरिक्त शिर और धड़ कुछ भी नहीं है। आसनसे पता चलता है कि प्रतिबिम्ब मनोज्ञ थी। चिह्न शेरका है। करीब २ फुट ऊँची पद्मासन है। पाषाण काला है।

लेख नम्बर २७

सम्वत् १२१० मइडितबालान्वये साहु श्रीसेठो भार्या महिव तयोः पुत्राः श्रील्हा-श्रीबर्द्धमान-माल्हा, एते श्रेयसे प्रणमन्ति नित्यम्। बैशाख सुदी १३।

भावार्थः—वि० सं० १२१०के वैशाख सुदी १३को मइडितबालवंशोत्पन्न शाह सेठो उनकी धर्मपत्नी महिव उनके पुत्र-श्रील्हा-श्रीवर्द्धमान-माल्हा ये सब पुण्य वृद्धिके लिये प्रतिदिन प्रणाम करते हैं।

मूर्त्तिका शिर और दोनों हाथोंकी हथेली नहीं है। बाकी तमाम हिस्सा उपलब्ध है। चिह्न सेहीका प्रतीत होता है। करीब १॥ फुट ऊँची पद्मासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख नम्बर २८

सम्वत् १२०२ चैत्रसुदी १२ लमेचुकान्वये साहु भाने भार्या पद्मा सुत हरसेन, नायक कदलसिंह, देवपाल्ह एते प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः—वि० सं० १२०२के चैतसुदी १२को इस प्रतिबिम्बकी प्रतिष्ठा हुई। लमेचूवंशोत्पन्न शाह-भाने, उनकी पत्नी पद्मा, उनके पुत्र हरसेन, नायक कदलसिंह, देवपाल्ह ये प्रतिदिन प्रणाम करते हैं।

मूर्त्तिका शिर तथा बायाँ हाथ नहीं है। आसन-पर दोनों हथेली नहीं हैं। चिह्न वगैरह कुछ नहीं। करीब १॥ फुट ऊँचो पद्मासन है। पाषाण काला है।

लेख नम्बर २९

संवत् १२०० अषाड़वदी ८ जैसवालान्वये साहु खोने भार्या जाउह सुत साढू तथा पाल्ह-वील्हा—आल्हे—पदमा श्रेयसे प्रणमन्ति। (क्रमशः)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहानी–

नर्स

(लेखक—श्रीबालचन्द्र जैन एम० ए०, साहित्यशास्त्री)

रोगीके सिरहाने बैठी नर्स उसे एकटक देख रही थी। 'कितनी शान्ति और सौम्यता है इसके चेहरेपर, किन्तु हाय रे भाग्य! ऐसा भोला और सरल व्यक्ति भी मानसिक वेदनाओंका शिकार हो गया।' उसे सहानुभूति थी रोगीसे।

रोगीकी नींद टूटी। 'मुझे कोई नहीं रोक सकता'—वह बड़बड़ाया—दुनियाकी कोई शक्ति मुझे रोक नहीं सकती. मैं जाऊँगा दूर. इस पापभरी दुनियासे बहुत दूर, जहाँ मनुष्यका निशान भी न होगा, उसके पापोंकी छाया भी न होगी, मैं जाऊँगा........' रोगीने उठनेकी चेष्टा की।

"ईश्वरके लिए लेटे रहिए" नर्सने सहारा देकर उसे पुनः लिटाना चाहा।

"ईश्वर! ईश्वरका नाम लेनेवाली तुम कौन ?" रोगीने कठोर प्रश्न किया।

'जी. मैं नर्स' नर्सने मृदु उत्तर दिया।

"तुम यहाँ क्या करने आईं ?" रोगीने फिर पूछा।

"आपकी सेवा" नर्सका जबाब था।

"सेवा! हा-हा-हा!" रोगी ठहाका मारकर हँसा—'तुम सेवा करती हो, दूसरोंकी सेवा. कितना सुन्दर शब्द है सेवा!" रोगीने पागलकी हँसी-हँसी।

"जी, दूसरोंकी सेवा करना ही हमारा धर्म है, *नर्सका यही कर्तव्य है" नर्स डरते-डरते बोली!*

"तुम इसे धर्म मानती हो नर्स! लेकिन कभी तुमने अपनी भी सेवा की ? दुनियाने कभी तुम्हारी *सेवाओंका* मूल्य चुकाया ? थोड़ेसे चाँदीके टुकड़े देकर लोग समझ लेते हैं हम नर्सको रोटी देते हैं। पर तुम, जो रातदिन अपनी सुध भूलकर, उन्हें जीवनदान देती हो, इसे क्या ये दुनियावाले कभी समझ पाते हैं ? नहीं। दूसरोंके श्रमको नहीं समझ सकते ये दुनियावाले और वे समझनेकी कोशिश भी तो नहीं करते नर्स!"—रोगीने गहरी साँस ली। "दूसरोंकी इज्जत, विद्या, बुद्धि और सेवाको तराजूपर तौलनेवालोंकी सेवा तुम क्यों करती हो नर्स!" रोगी उद्विग्न हो रहा था—"उन्हें तड़प-तड़पकर मर क्यों नहीं जाने देती, अपने कर्मोंका फल क्यों नहीं भोगने देती" रोगीकी सदय आँखें नर्सकी आँखोंसे मिल गईं।

नर्स चुप थी।

"बोलो, बोलो सेवाकी देवी, दुनियाँभरके पापियोंको मृत्युशय्यासे जगाकर उनमें जीवनी शक्ति भरकर दुनियाके पापोंकी संख्या क्यों बढ़ाती हो" कहनेके साथ ही रोगीने झटकेसे करवट बदली।

"जिलाना और मारना तो ईश्वरके हाथकी बात है चन्द्रबाबू, हम तो अपना कर्तव्य करते हैं" नर्सने धीरेसे कहा।

'ईश्वर'—चन्द्रको जैसे तीर लगा—"तुमने फिर ईश्वरका नाम लिया"—वह तड़प उठा—"जानती नहीं, मैं ईश्वरका दुश्मन हूँ। ईश्वर! दुनियाभरके *ठगोंका सरदार।" उसने मुँह फेर लिया।*

"ऐसा न कहिए। उस दयालु परमात्माको बुरा-भला कहकर पापके भागी न बनिए।" नर्सने अनुरोध किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"तुम उसे दयालु कहती हो, परमात्मा कहती हो, जिसने थैली-पतियोंको गरीबोंका शोषण करनेका बल दिया, गरीबोंके मौलिक अधिकारोंकी माँगको अनैतिक और विद्रोह बताकर उन्हें चिर गुलामीमें बाँध दिया, जिसने दुनियाभरके अत्याचारों और अनाचारोंको धार्मिक प्रश्रय दिया, उसे तुम दयालु परमात्मा कहती हो नर्स ! पत्थरके भगवानको दयाका अवतार कहते तुम्हें अपनेपर हँसी नहीं आती देवी !" —चन्द्र खीझ रहा था—'भोली नारी सबको अपने जैसा ही समझती है' उसने करवट बदली।

नर्सने कोई उत्तर न दिया। कमरा नीरव हो गया, दोनों चुप थे।

"आपके दवा पीनेका समय हो गया, मैं अभी लाई" नर्सने नीरवता भङ्ग की।

"दवा ! क्यों ? मुझे हुआ क्या जो दवा पिलाती हो।" रोगीने आँखें खोलीं।

"जी, आप अस्वस्थ हैं, आपको दवा पीनी ही चाहिए, मैं अभी लाई" नर्स दवा बनानेको चल दी।

"नर्स ठहरो। मैं पूर्ण स्वस्थ हूं, मुझे दवाकी आवश्यकता नहीं" रोगीने निषेध किया।

"नहीं, आपको दवा पीनी ही चाहिए चन्द्रबाबू, आपका स्वास्थ्य अभी ठीक नहीं हुआ।" नर्सने अनुनय की।

"किसने कहा तुमसे कि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है" चन्द्रने मधुर हँसी हँसी।

"डाक्टरने, वे आपको मेरी निगरानीमें छोड़ गए हैं। मुझे अपनी ड्यूटी करने दीजिए अन्यथा डाक्टर नाराज होंगे।" नर्सने सरल प्रार्थना की।

"डाक्टर !" चन्द्रने विस्मयसे आँखें फाड़ीं—"कौन डाक्टर ?" उसने प्रश्न किया।

"डाक्टर किशोर" नर्सने उत्तर दिया।

"डाक्टर किशोर ! तो क्या मैं डाक्टर किशोरके अस्पतालमें हूं" रोगीकी जिज्ञासा बढ़ी।

"जी हाँ, आप उन्हींके अस्पतालमें हैं। और वही आपका इलाज भी कर रहे हैं। आप अपने कमरेमें बेहोश पड़े थे—शायद आपने जहर खा लिया था—डाक्टर आपको यहाँ ले आए और कल रातभर आपकी सेवामें लगे रहे। अब हालत कुछ ठीक देखकर सबेरे ही घर गए हैं और जाते समय मुझे आपकी पूरी फिकर करनेकी आज्ञा दे गए हैं" नर्सने सरलतासे यह बात कह दी, जिसे डाक्टर किशोर छिपाना चाहता था।

"तो यों कहो कि मुझे इस घृणित दुनियामें फिरसे खींच लानेवाला डाक्टर किशोर ही है। नीच ! धोखेबाज ! मेरा सर्वस्व छीनकर अब मेरी स्वतन्त्रता भी छीनना चाहता है। मेरे जीवनभरकी मित्रताकी कोई कदर न करनेवाला पापी है कहाँ ?" चन्द्रकी आँखें लाल हो गईं।

"वे घर गए हैं चन्द्रबाबू, आप शान्त हो जाइए" नर्सने मीठे अनुनय भरे स्वरमें प्रार्थना की।

"ठीक, अच्छा ही हुआ कि वह यहाँ नहीं है। मैं उसकी सूरत भी नहीं देखना चाहता, मुझे उससे नफ़रत है, उसकी सूरतसे नफ़रत है, उसके पेशेसे नफ़रत है। मैं जाऊँगा, अभी जाऊँगा" चन्द्रने उठनेकी चेष्टा की।

"नहीं-नहीं, लेटे रहिए चन्द्रबाबू" नर्सने कंधे पकड़कर उसे फिर लेटानेकी चेष्टा की। पर इस बार वह रोगीको मनानेमें असफल रही। चन्द्र उठ खड़ा हुआ और वेगसे दरवाजेकी ओर बढ़ा।

"मान लीजिए चन्द्रबाबू, मत जाइए, आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, डाक्टरके सारे प्रयत्नोंपर पानी फेरकर अपने जीवनको खतरेमें न डालए।" नर्सकी आँखें डबडबा आईं।

"मैं यहाँ क्षणभर भी नहीं ठहर सकता देवी, अपनी बहिनका खून करनेवाले दुष्ट डाक्टरकी सूरत मैं नहीं देख सकता। मैं चला, अपनी बहिनके पास—देखो देखो वह मुझे बुला रही है"—चन्द्र वेगसे अस्पतालसे बाहर हो गया।

नर्स रोकती रह गई।

* * *

डाक्टरने जब कमरेमें प्रवेश किया तो रोगीके पलङ्गको खाली पाया और नर्सको एक कोनेमें खड़े

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आँसू बहाते देखा।

"नर्स, चन्द्र कहाँ है ?" उसके स्वरमें तीव्रता थी।

"जी, वह चले गए" नर्सने लड़खड़ाते स्वरमें उत्तर दिया।

"कहाँ ?" डाकृरके स्वरमें भयानक आशङ्काजन्य कम्पन था।

"अनजानी जगह। मैंने उन्हें बहुत रोका पर वे रुके नहीं," नर्सने काँपते हुए जबाब दिया—"आपका अस्पताल जानकर वे एकक्षण भी नहीं रुके" उसने आगे कहा।

"तो वही हुआ जिसका मुझे भय था। तुमने उसे बता ही दिया कि मैं उसका इलाज कर रहा हूं। वह मुझे अपनी बहिनका हत्यारा समझता है नर्स! मेरी सूरतसे नफ़रत करता है वह। पर मैं क्या करता, मैं किसीकी आयुसे तो लड़ नहीं सकता। मैंने लाख प्रयत्न किए पर क्षमाको कालके गालसे न निकाल सका। मैंने उसे जो झूठा आश्वासन दिया था कि क्षमा अच्छी हो जायगी, वह सिर्फ उसकी रक्षाके लिये। क्योंकि मैं जानता था कि क्षमा ही उसके जीवनका सहारा है और उसके जीवनका अन्त चन्द्र के जीवनका भी अन्त है। इसलिये बहिनकी मृत्यु निश्चित जानते हुए भी मैं उससे छिपाये रहा और उसने मेरे कथनपर विश्वास किया। पर उस अँधेरी रातमें जब दीपक बुझ ही गया तो मैं चन्द्रकी नज़रोंमें धोखेबाज़ बन गया। उसने धारणा बना ली है कि मैं ही क्षमाका हत्यारा हूँ. मैं उसे बचा सकता था पर मैंने उसे बचाया नहीं। मेरा मित्र मुझसे नफ़रत करने लगा। दया और ममताकी देवीके उठजेके साथ ही सारी दुनिया उसके लिये दया और ममतासे शून्य हो गई—वह पागल हो गया। चन्द्र—मेरा चन्द्र—उसे वापस लाना होगा नर्स, उसे वापस लाना होगा........।" डाकृर विह्वल हो उठा।

"मैं आदमी भेजती हूँ।" नर्स बाहर हो गई।

* * *

चन्द्र अस्पतालसे भागा तो, पर उसे कुछ भी ज्ञान न था कि वह कहाँ जारहा है। वह सिर्फ इतना ही जानता था कि वह डाकृर किशोरकी सूरत भी नहीं देखना चाहता। विक्षिप्त मस्तिष्क और कमज़ोर शरीर आख़िर टकरा गया सामनेसे आनेवाली मोटर कारसे। ड्राईवरके बहुत बचानेपर भी दुर्घटना हो ही गई और चन्द्र भूमिपर गिर पड़ा। उसका सिर फट गया।

भीड़ एकत्र हो गई। डाकृर किशोरका अस्पताल दूर न था। तत्परतासे उसे वहाँ ले जाया गया, जहाँ से कुछ समय पूर्व भागनेके कारण ही यह दुर्घटना हुई थी।

"चन्द्र!" डाकृर किशोरकी आँखोंमें आँसू भर आये उसकी यह हालत देखकर।

"तूने यह क्या किया चन्द्र!" डाकृरके इस प्रश्न का उत्तर देता कौन ? दुर्घटनाके बाद ही चन्द्र बेहोश होगया था। उसका सारा शरीर रक्तमें सन गया था।

"नर्स! ऑपरेशनकी तैयारी करो, चन्द्र वापस आगया।" किशोरने भर्राये स्वरमें कहा।

जी डाकृर!" आँसू पोंछती नर्स ऑपरेशन थिएटरकी ओर चल दी।

* * *

चन्द्रने आँख खोली।

"अब आप अच्छे हैं ?" नर्सने उसके सिरपर हाथ फेरते धीरेसे कहा।

"मैं, मैं अच्छा हूँ! मैं कहाँ हूँ, तुम कौन हो ?" चन्द्र समझ न पारहा था कि वह कहाँ है ?

"आप अस्पतालमें हैं चन्द्र भइया!" नर्सको चन्द्रसे भाई जैसा स्नेह होगया था। मोटर दुर्घटनामें पड़ जानेसे आपके दिमाग़को चोट पहुँची थी, लेकिन अब सब ठीक है, ऑपरेशन सफल हुआ। डाकृर अभी आते ही होंगे। आप उनसे मिलेंगे चन्द्र भइया!" नर्स अभी भी उसके सिरपर हाथ फेर रही थी।

"भइया, तुमने मुझे भइया कहा। पर तुम तो क्षमा नहीं हो। वह तो चली गई मुझे छोड़कर।" चन्द्रने आँखें फाड़कर नर्सको देखा।

"हाँ, मैं क्षमा नहीं, पर क्षमाकी भाँति ही मैं आपकी सेवा कर सकती हूँ। मुझे दे दीजिये क्षमाका

पवित्र स्थान चन्द्र भइया !" नर्सने आँसू भरकर कहा—"आप मुझे 'भइया' कहनेका अधिकार दे दीजिये ।"

"तुम कहोगी मुझे भइया ? मेरी बहिन बनोगी, मुझे जीवनका दान दोगी ? मेरे निरुत्साह और निराश जीवनमें उत्साह और आशाकी ज्योति प्रदीप्त करोगी देवी !" चन्द्रने नर्समें वही देवीरूप देखा।

"हाँ भइया !" नर्सकी आँखोंसे झर-झर आँसू बह पड़े।

"तो आओ, मेरे गलेसे लग जाओ बहिन ! तुम सचमुच मेरी बहिन हो, क्षमा जैसी ही ममतामयी हो तुम ! क्षमा, मैंने तुम्हें पा लिया !" चन्द्रने नर्सको छातीसे लगानेके लिये हाथ पसार दिये।

भाई और बहिनके सम्मिलनका दृश्य सचमुच अपूर्व था। दोनोंकी आँखोंसे अश्रुधारा बह रही थी। डाक्टर किशोरने इसी समय कमरेमें प्रवेश किया।

"किशोर, डाक्टर किशोर ! मेरी बहिन आ गई, क्षमा आ गई किशोर !" चन्द्रने किशोरका स्वागत किया।

"मैंने कहा न था चन्द्र, कि बहिनको तुमसे अलग न होने दूँगा !" किशोरकी आँखें गीली हो गईं।

"हाँ किशोर !" चन्द्रने आँखें बन्द कर लीं।

'अब तुम आराम करो, मैं जाता हूँ। फिर आऊँगा। पर अब भागना नहीं और न अपने किशोर से नफ़रत ही करना।" किशोरने व्यङ्ग किया।

"मुझे क्षमा कर दो किशोर !" चन्द्रने पश्चात्ताप किया।

"अच्छा यह सब पीछेकी बात है, हम निपट लेंगे। अभी मुझे कई आवश्यक कार्य हैं, मैं जाता हूँ।" किशोर चल दिया। दरवाजेतक पहुँचकर वह एक क्षण रुका।

"अपने भाईको भागने मत देना नर्स !" वह मुस्कराया।

"जी, आप विश्वस्त रहें, भइया अब नहीं भागेंगे।" मुस्कराहटके साथ नर्सने चन्द्रको देखा।

"हाँ, अब मैं नहीं भागूँगा।" चन्द्र भी मुस्कराया।

अपभ्रंशका एक शृङ्गार-वीर काव्य

वीरकृत जंबूस्वामिचरित

(लेखक—श्रीरामसिंह तोमर)

विक्रम संवत् १०७६में वीर कवि-द्वारा निर्मित जम्बूस्वामिचरित अपभ्रंशकी एक महत्वपूर्ण रचना है। प्रस्तुत कृतिके ऐतिहासिक पक्षसे सम्बन्धित एक सुन्दर लेख प्रेमी-अभिनन्दन-ग्रन्थमें श्री पं. परमानन्द जी जैनने लिखा है। यहाँ कृतिके साहित्यिक पक्षपर विचार किया जावेगा। कविने अपनी कृतिको सन्धियोंके अन्तमें 'शृङ्गार-वीर-महाकाव्य' कहा है किन्तु कृतिकी प्रारम्भिक भूमिकामें उसने कथा कहनेकी प्रतिज्ञा की है—

पारंभिय पच्छिमकेवलहिं जिहं कह जंबूसामिहि ॥

इसी भूमिका-प्रसङ्गमें आगे कविने रस, काव्यार्थ के उल्लेख किये हैं और स्वम्भू, त्रिभुवन जैसे कवियों तथा रामायण और सेतुबन्ध जैसी विख्यात कृतियों-का स्मरण किया है—

सुइ सुहयरु पढइ फुरंतु मणे ।
कव्वत्थु निवेसइ णियवयणे ।
रसभावहिं रंजिय विउसयणु ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो मुयवि सयंभु अरणु कवणु ।
सो वेय-गव्वु जइ नउ करइ ।
तहो कज्जे पवणु तिहुयणघरइ ।
....

महकइ वि निबद्धउ न कव्वभेउ ।
रामायणम्मि पर सुणिउ सेउ । १-२-३

कृतिके प्रारम्भमें इस प्रकारके उल्लेख विना प्रयोजनके नहीं हो सकते हैं। प्रस्तुत कृति 'कथा' है अथवा शृङ्गार-वीररस प्रधान महाकाव्य इसकी परीक्षा करनेके पूर्व कृतिकी कथावस्तु संक्षेपमें देखना आवश्यक है।

मङ्गलाचरण तथा कथानिर्देशके अनन्तर कविने सज्जन-दुर्जनों, पूर्वके कवियों आदिका स्मरण किया है और नम्रतापूर्वक काव्य रचनामें अपनी असमर्थता प्रकट की है। फिर कविने अपना और अपने सहायकोंका उल्लेख किया है। इस छोटीसी प्रस्तावनाके अनन्तर कविने मगधदेश, और उसमें स्थित राजगृहनगर, उसके निवासियोंके सुन्दर काव्यशैलीमें वर्णन उपस्थित किये हैं। वहाँके श्रेणिक राजा तथा उनकी रानियोंका वर्णन किया है। नगरके समीपस्थ उपवनमें भगवान वर्द्धमानके समवसरण रचे जानेका समाचार पाकर पुरजनों सहित मगधेश्वर इन्द्र द्वारा निर्मित समवसरण-मण्डपमें पहुँचकर जिन भगवानकी स्तुति करके बैठते हैं। (सन्धि १)

प्रणाम करके विनय भावसे श्रेणिकराज जिनवरसे जीवतत्त्वके सम्बन्धमें जिज्ञासा करता है। गणधर राजासे जीवके सम्बन्धमें व्याख्या कर रहे थे उसी समय आकाश मार्गसे तेजपुञ्ज विद्युन्माली भासुर आया। और विमानसे उतरकर जिनदेवको प्रणाम करके बैठ गया। तेजवानदेवके सम्बन्धमें राजाके पूछनेपर गणधरने बताया कि वह (विद्युन्माली) अन्तिम केवली होगा। अभी उसकी आयुके केवल सात दिन है किन्तु उसे अभी तेजने नहीं छोड़ा। राजाने उस देवके ऐश्वर्यसे प्रभावित होकर उसके पूर्व जन्मोंकी कथा सुननेकी इच्छा प्रकट की। जिनदेवने उसकी कथाको इस प्रकार प्रारम्भ किया—

मगध मण्डलमें वर्धमान ग्राम था, जहाँ वेदघोष करनेवाले, यज्ञमें पशुओंकी वलि देनेवाले, सोमपान करनेवाले, परस्पर कटुवचन बोलनेवाले अनेक ब्राह्मण रहते थे। उस ग्राममें अत्यन्त गुणवान ब्राह्मण-दम्पति श्रुतकण्ठ-सोमशर्मा रहते थे। उनके दो पुत्र भवदत्त और भवदेव थे। जब उन दोनोंकी आयु क्रमशः १८, १२ वर्ष थी, श्रुतकण्ठ चिरजन्मोंमें अर्जित पाप कर्मोंके फलस्वरूप कुष्ठ रोगसे पीड़ित हुआ और जीवनसे निराश होकर चिता बनाकर अग्निमें जल गया। प्रियविरहसे सोमशर्मा भी अग्निमें में जल मरी। शोक संतप्त दोनों भाइयोंको स्वजनोंने शान्त किया। उन्होंने अपने माता-पिताकेसंस्कार किये।

भवदत्तका मन संसारमें नहीं रमता था अतः वह दीक्षा लेकर शुद्ध चरित्र दिगम्बर होगया—

दंसणु स लहंतउ विसयचयंतउ सुद्धचरित्तु दियंबरु ।
गुरु वयण सवण रइ दिढमइ विहरइ कम्मासयकयसंवरु ॥ २-७ ॥

उवयार बुद्धि समणीय परहो, तो हुय भवयत्त दियंबरहो । २-८ ॥

इस प्रकार बारह वर्षतक तपस्या करनेके पश्चात् भवदत्त एक बार संघके साथ अपने ग्रामके समीप पहुँचा। संघकी आज्ञासे वह भवदेवको संघमें दीक्षित करनेके लिये वर्धमान ग्राममें गया। इस समय भवदेवका दुर्मर्षण और नागदेवीकी पुत्री नागवसूसे परिणय होरहा था। भाईके आगमनका समाचार सुनकर वह उससे मिलने आया और स्नेहपूर्ण मिलन के पश्चात् उसे भोजनके लिये घरमें लेजाना चाहता था। भवदेवको इसके अनन्तर भवदत्त अपने संघमें लेगया और वहाँ मुनिवरने उससे तपश्चर्याव्रत लेनेको कहा। भवदेवको इधर शेष विवाह-कार्य सम्पन्न करके विषय-सुखोंका आकर्षण था, किन्तु भाईकी इच्छाका अपमान करनेका साहस उसे नहीं हुआ और प्रव्रज्या (दीक्षा) लेकर वह देश-विदेशोंमें संघके साथ बारह वर्षतक भ्रमता रहा। एक दिन अपने ग्रामके पाससे निकला। भवदेव घर जाकर विषयोंके सुखोंका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आस्वादन करना चाहता था, किन्तु भवदत्तने फिर उसे रोक दिया। भवदेव अन्तमें संसारको त्यागकर अन्तिम दीक्षा ले लेता है। दोनों भाई तप करते हुए अवसान-समयमें पंडितमरणसे मरते हैं, दोनों सनत्कुमार स्वर्गमें जाते हैं और वहाँ सप्तसागर आयु तक वास करते हैं, देवयोनिमें रहकर वे विमानोंमें चढ़कर रमण करते हैं। (सन्धि २)

भवदत्तका जन्म स्वर्गसे च्युत होनेपर पुंडरीकिनी नगरीमें वज्रदन्त राजाकी रानी यशोधनाके पुत्रके रूप में हुआ और भवदेव वीतशोका नगरीके राजा महापद्मकी रानी वनमालाके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ। भवदत्तका नाम सागरचन्द रक्खा गया और भवदेव का शिवकुमार। शिवकुमारका एकसौपाँच (सयपंच) राजकन्याओंसे परिणय होगया और कोड़ियों उनके अङ्गरक्षक थे। उन्हें बाहर नहीं जाने दिया जाता था। उधर पुंडरीकिनी नगरीके समीप उपवनमें चारण मुनियोंसे पूर्व जन्मका वृत्तान्त सुनकर सागरचन्दने संन्यास (साधुदीक्षा) व्रत ले लिया था और द्वादश-विधि तपश्चर्यामें रत था। एक बार वह वीतशोका नगरीमें पहुँचा। शिवकुमारने प्रासादोंके ऊपरसे मुनियोंको देखा। उसे पूर्व जन्मोंका स्मरण हो आया और वैराग्य-भावोंका उसके मनमें उदय हुआ। यह देखकर राजप्रासादमें कोलाहल मच गया। राजाने आकर कुमारको समझाया कि घरमें ही रहकर तप और व्रतोंका पालन हो सकता है, संन्यास लेनेकी आवश्यकता नहीं है। पिताके वचनोंको मानकर कुमारने नवविध श्रेष्ठ ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया, तरुणीजनोंके पास रहते हुए भी उनसे वह विरक्त रहता था। उपवास करता था। दूसरे घरोंसे भिक्षा लेकर पारणा करता था। इस प्रकार तप करके अन्तमें इस लोकको छोड़कर वह विद्युन्माली देव हुआ। दससागर उसकी आयु हुई और चार देवियोंके साथ सुख भोग करता था। उधर सागरचन्द भी मरकर सुरलोकमें इन्द्रके समान देव हुआ। वर्धमान जिनने राजाको बताया कि यही विद्युन्माली वहाँ आया था और सातवें दिन मनुष्यरूपमें अवतरित होगा। श्रेणिकराजने वर्धमान जिनसे फिर, विद्युन्माली जिन चार देवियोंके साथ रमण करता था, उनके पूर्व भवान्तरोंके विषयमें पूछा। जिनवरने बताया कि चंपा नगरीमें सूरसेन नामक धन-सम्पन्न श्रेष्ठी था, उसकी जयभद्रा, सुभद्रा, धारिणी, यशोमती नामक चार स्त्रियाँ थीं। वह श्रेष्ठी पूर्वसंचित पापकर्मोंके फलस्वरूप व्याधिग्रस्त होकर मर गया और उसकी चारों पत्नियाँ आर्जिकाएँ होगईं। तपःसाधन करनेके पश्चात् मरकर वे स्वर्गमें विद्युन्मालीकी पत्नियाँ हुईं। इसके पश्चात् श्रेणिकराजने विद्युच्चरके विषयमें पूछा कि इतना तेजवान् होनेपर भी वह चोरत्वको क्यों प्राप्त हुआ? जिनवरने बताया कि मगधदेशमें हस्तिनापुर नगर था, वहाँ विसन्धर राजा था, उसकी प्रिया श्रीसेना थी, उसका पुत्र विद्युच्चर हुआ। वह सकल विद्याओंमें पारङ्गत था। विद्याबलसे वह चोरी करता था। औषधिसे खम्भ बनाकर रात्रिको अपने पिताके घरमें पहुँचकर चोरी कर लेता था, जगते हुए राजाको सुषुप्त कर देता था और कटि-हार आदि आभूषण उतार लेता था, वह राज्य छोड़कर राजगृह नगरी चला गया और चोरी करने लगा। इसीसे उसका नाम विद्युच्चर हुआ (सन्धि ३)।

चतुर्थ सन्धि वीरकविकी प्रशंसासे प्रारम्भ होती है। वर्धमान जिस समय कथा प्रारम्भ कर रहे थे कि एक यक्ष उठकर नाचने लगा। पश्चिम केवली मगधमें अरहदास वणिकके कुलमें जन्म होनेकी बात सुनकर वह आनन्दित होकर नाच रहा था। विस्मित होकर राजाने आनन्दसे नाचते हुए यक्षसे प्रश्न किया। जिनेन्द्रने इस प्रकार उत्तर दिया—सङ्क्षउ नगरी थी वहाँ सन्तप्रिय (संताप्पिउ) वणिक रहता था। उसकी गोत्रवती प्रिया थी। अरहदास उसका पुत्र था, दूसरा पुत्र जिनदास था। जिनदास तरुण अवस्थामें दुर्व्य-सनोंमें फँस गया। मदिरा पीता था, द्यूतक्रीड़ामें रत रहता था। किन्तु उसने अन्तमें श्रावक व्रत लेकर पाप विसर्जित किए और वह मरकर यक्ष हुआ इसके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाई अरहदासके यहाँ विद्युन्मालीका अन्तिम केवली-के रूपमें जन्म होगा यह सुनकर हर्षित होकर यह नाच रहा है। सातवीं रात्रिके चतुर्थ प्रहरमें अरहदास की प्रियाने जम्बूफल आदि वस्तुएँ स्वप्नमें देखीं। स्वप्नों का फल बताते हुए मुनि कहते हैं कि उसके एक पुत्र होगा जो सोलह बरस रहकर दीक्षा लेगा। समया-नुकूल जम्बू जन्म लेते हैं और शीघ्र विद्याध्ययन समाप्त करते हैं। जम्बूफल स्वप्नमें उनकी माताने देखा था इसलिये उनका नाम जम्बूस्वामी रखा गया। जम्बूस्वामी अत्यन्त सुन्दर थे. नगरकी रमणियाँ उन्हें देखकर आसक्त होजाती थीं और विरहका अनुभव करने लगती थीं।

उसी नगरमें समुद्रदत्त श्रेष्ठि रहता था. उसके चार सुन्दर पुत्रियाँ थीं, समुद्रदत्तने उन कुमारियोंका विवाह जम्बूस्वामीसे करना निश्चित किया। विवाहकी तैयारियाँ हो रहीं थी. इतनेमें ही वसन्त-ऋतु आ पहुंची. सब लोग वसन्तोत्सवके लिए राजोद्यानमें जाते हैं। क्रीडाके उपरान्त सुरति खेदको दूर करनेके लिए सरोवरमें जलक्रीडा सब करते हैं. सब लोग जब वस्त्र आभूषणोंको पहनकर नगरकी ओर जा रहे थे कि एक प्रमत्त गज आकर सबको त्रस्त कर देता है जब सब भयभीत होकर भाग रहे थे जम्बू उसे वीरता पूर्वक परास्त कर देते हैं (सन्धि ४)।

वीरताके इस कार्यसे प्रसन्न होकर राजाने जम्बू-कुमारको अपने बराबर आसन दिया। जब यह राजसभा चल रही थी उसी समय आकाशसे, एक विमान वहाँ पहुंचा और एक विद्याधर सम्मुख उप-स्थित हुआ। उसने अपना निवास 'सहसंसिग' नगरी में बताया तथा उसका नाम गगनगति था। उसने बताया कि केरल नगरीके राजा मृगाङ्कने उसकी बहिन मालतीसे विवाह किया है और उसकी पुत्री विलास-वती अत्यन्त रमणीय है। हंसद्वीपमें निवास करने वाले विद्याधरसे रत्नसिंहने मृगाङ्कसे उस कन्याको माँगा। राजाके न देनेपर उसने केरलनगरीपर कुमारी को लेनेके लिए धावा कर दिया। वह विद्याधर जम्बूसे वहाँ जाकर कन्याके साथ परिणय करनेकी प्रार्थना करता है। जम्बू अकेले जाकर विद्याधरसे युद्ध करते हैं। मृगाङ्कराजा कन्या जम्बूस्वामीको समर्पित कर देता है। पीछेसे श्रेणिकराजकी सेना भी देशान्तरोंमें भ्रमण करती हुई पहुँच जाती है। रत्नशेखर(-सिंह-चूल) विद्याधरकी हार होगी ऐसा प्रतीत होने लगता है (सन्धि ५)।

छठी सन्धिका प्रारम्भ कुछ प्राकृत पद्योंमें की गई कविवीरकी कवि-प्रतिभाकी प्रशंसासे होता है। उस सम्पूर्ण सन्धिमें जम्बूस्वामीके युद्ध कौशलका वर्णन किया गया है। अन्तमें रत्नशेखरको मृगाङ्क राजा परा-जित कर देता है और जम्बू सहस्रों भटोंको परास्त कर देते हैं। युद्धका वर्णन बड़ी क्षमतापूर्वक कविने किया है। युद्धके प्रसङ्गमें अद्भुत, बीभत्स व्यापारोंका चित्रण करते हुए कविने साङ्गोपाङ्ग युद्ध वर्णन किया है। आठ सहस्र विद्याधरोंको उसने परास्त कर दिया। अन्तमें पराजित रत्नसिंहको वह क्षमा कर देता है। विद्याधर रत्नसिंह पाँचसौ विमान लेकर जम्बूके साथ उसे मगध पहुंचाने चल देता है। विमान नर्मदकुरुल (रम्मायकुरुल) शिखरपर पहुंचता है जहाँ मगधेशकी सेनाका स्कंधावार था, जम्बूने उतरकर उनसे भेंट की। गगनगति सबका राजासे परिचय कराता है मृगाङ्ककी पुत्रीसे शुभ मुहूर्तमें जम्बूका विवाह होता है। जम्बू जिस समय अपने नगरमें प्रवेश कर रहे थे उपवनमें महर्षि सुधर्मस्वामी पञ्च शिष्यों सहित आते हैं। महर्षिको जम्बूस्वामी भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं (सन्धि ६-७)।

मुनिसे जम्बूस्वामी अपने पूर्व-भावोंका वृत्तान्त सुनते हैं और तदनन्तर घर आकर माता पिताको प्रणाम करके प्रव्रज्याव्रत लेनेका विचार करते हैं। पुत्रके ऐसे वचन सुनकर माता मूर्छित हो जाती है। जम्बूको वह समझाती है कि उसके वैराग्य लेनेसे कुल विलीन हो जावेगा। इसी समय सागरदत्तके द्वारा प्रेषित व्यक्ति आकर जम्बूका विवाह निश्चित करता है और सागरदत्तकी चार कन्याओंसे जम्बूका विवाह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो जाता है। और कविने शृङ्गारके अनेक उपकरणों-के साथ जम्बू और नव परिणीतावधुओंके संभोग शृङ्गारका वर्णन किया है। कविने इस सन्धिको अत्यन्त उपयुक्त 'विवाहोत्सव' नाम दिया है (संधि ८)

महिलाओंके मोहसे उत्पन्न प्रेमसे जम्बूके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न होता है। महिलाओंकी वे निन्दा करते हैं. उनकी विरक्ति भावनाको दूर करनेके लिए जम्बू-की प्रियतमाएँ कमलश्री, कनकश्री, विनयश्री, रूपश्री प्राचीन कथानक कहती हैं; जम्बू इसके विपरीत वैराग्यके महत्वको प्रतिपादित करनेवाली कहानियाँ कहते हैं। बात करते-करते इस प्रकार आधी रात बीत गई किन्तु कुमारका मन सांसारिक प्रेममें नहीं लगा. इसी समय विद्युच्चर चोरी करता हुआ नगरमें आया—

गउ अद्धरत्तु वोल्लंतहो तो वि कुमार ण भवे रमइं ।
तहें काले चोर विज्जुचरु चोरेवइ पुरे परिभमइं ॥११॥

नगरमें घूमता हुआ जम्बूके गृहमें विद्युच्चर पहुंचता है। जम्बूकी माता सोई नहीं थी, चोरका समाचार जाननेपर उसने कहा कि वह जो चाहे सो ले ले। विद्युच्चरको जब जम्बूकी माता शिवदेवीसे जम्बू की वैराग्य-भावनाके विषयमें ज्ञात हुआ तो उसने प्रतिज्ञा की कि या तो वह जम्बूकुमारके हृदयमें विषयोंमें रति उत्पन्न कर देगा और नहीं तो स्वयं तपस्या-व्रत ले लेगा—

वहुवयण-कमल-रसलंपुड भमरु कुमारु ण जइ करमि ।
आएणसमाणु विहाणए तो तव चरणु हउं विसरमि ।१६।

'वधुओंके वदनकमलमें कुमारको रस-लम्पट भ्रमर यदि नहीं करूँ तो मैं भी इसीके समान प्रातः-काल तपश्चरण करूँगा।'

जम्बूकी माता रात्रिको उसी समय उस चोरको अपना छोटा भाई कहकर जम्बूके समीप लेजाती है। जम्बू वेष बदले हुए विद्युच्चरको देखकर उससे कुशल प्रश्न करके पूछते हैं कि उसने किन-किन देशोंमें भ्रमण किया। व्यापारके भ्रमण किये देशोंके नामोंको सुनकर जम्बू उसे बड़ा वीर समझते हैं—

विहुणवि सिरु विंभियचित्तें वुच्चई मामु ण वणियवरु ।
पच्चक्खु दइउ इय सत्तिए अवस होसि तुहं वीरणरु ।१९।

विस्मितचित्त होकर शिर हिलाकर कहता है—मामा वणिकमात्र ही नहीं है, प्रत्यक्ष दैवसे प्राप्त शक्ति से युक्त अवश्य तुम वीर पुरुष हो। (सन्धि ९)

दसवीं सन्धिमें कई मनोहर आख्यान जम्बू और विद्युच्चरद्वारा कहे गये हैं। जम्बू वैराग्यमें उपसंहार होनेवाले आख्यान कहकर विषय-भोगोंकी निस्सारता दिखाते हैं और विद्युच्चर वैराग्यको निरर्थक बतानेवाले आख्यान कहता है। अन्तमें जम्बूकी दृढ़तासे वह प्रभावित होजाता है। जम्बू सुधर्मस्वामीसे तपस्याकी दीक्षा ले लेते हैं, सभी उनकी पत्नियाँ आर्यिका होजाती हैं, विद्युच्चर भी प्रव्रज्याका व्रत ले लेता है। सुधर्म-स्वामी निर्वाण प्राप्त करते हैं। जम्बूस्वामी केवलज्ञान प्राप्त करते हैं और अन्तमें संल्लेखना करते हुए निर्वाण प्राप्त करते हैं। विद्युच्चर भ्रमण करता हुआ ताम्रलिप्त-पुरमें पहुंचता है जहाँ कात्यायनी भद्रमारीके प्राधान्य को नष्ट करता है।

ग्यारहवीं सन्धिमें विद्युच्चरके दशविधधर्म पालन-द्वारा और तपस्याद्वारा अन्तमें समाधिमरण पूर्वक सर्वार्थसिद्धि प्राप्तिका वर्णन है ग्रन्थकी समाप्ति करते हुए कविने कहा है कि उसकी कृतिका पाठ करनेसे मङ्गलकी प्राप्ति होती है।

जम्बूस्वामिचरितकी ग्यारह सन्धियोंमेंसे प्रायः प्रत्येकमें सद्-काव्यकी प्रशंसा की गई है[1]। कविने

१ सन्धि प्रथममें कई उल्लेखोंके साथ अन्तमें कहा है—
'कव्वेयं पूर्वसिद्धयै वा भूयोपक्रियते मया'।
सन्धि ३के प्रारम्भमें निम्न प्राकृत पद्य है:—
वालक्कीलासुवि वीर वेयण पसरत कव्व-पीऊसं ।
कण्णपुडएहिं पिजइ जणेहिं रस मउलियच्छेहिं ॥ १ ॥
भरहालंकारसलक्खणाइं लक्खे पयाइं विरयंती ।
वीरस्स वयणरंगे सरस्सई जयउ णच्चंती ॥ २ ॥
सन्धि ५के प्रारम्भमें स्वयंभू, पुष्पदन्त और देवदत्त कवियोंकी प्रशंसाके साथ वीरकी प्रशंसा की गई है:—
दिवसेहिं इह कवित्तं णिलए णिलयम्मि दूरमायण्णं ।

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

'सुकवित्त्व' रचना करनेकी इच्छा प्रथम सन्धिमें प्रकट की है और अपनेको उसके अयोग्य कहा है।

'सुकवित्त करण मण वावडेण' । १-३

इस प्रकारके उल्लेखोंसे प्रस्तुत कृति केवल धार्मिक कथा-कृति नहीं ज्ञात होती और कविने स्वयं भी उसे महाकाव्य कहा है, जिसमें शृङ्गार और वीर रसोंकी प्रधानता है। कृतिकी ग्यारह सन्धियोंमें कथा-रसके अनुकूल इस प्रकार है।

प्रथम सन्धिमें भूमिकास्वरूप जिनकेवलीके समवसरणका वर्णन हैं और श्रेणिकके उस धर्मसभामें जानेकी कथा है। इस सन्धिमें कथा कही गई है और देश, नगर आदिके सुन्दर वर्णन भी हैं। किसी विशेष रस-परिपाकके लिये इस सन्धिमें स्थान नहीं मिल सका। श्रेणिकके भक्तिभावमें उत्साह है जिसे शान्त रसका स्थायी कहा जा सकता है। प्रस्तुत सन्धिमें वीर और शृङ्गार रसका कोई स्थान नहीं हैं।

दूसरी सन्धिमें श्रेणिकके प्रश्नका उत्तर गणधर देते हैं। इसी समय बड़े लटकीय कौशलसे कविने जम्बूके जन्मान्तरोंसे सम्बन्धित कथाका प्रारम्भ किया है। अतः जम्बूचरितका प्रारम्भ इसी सन्धिसे होता है। हम देखनेका प्रयत्न करेंगे कि प्रमुख चरित्रमें कहाँतक शृङ्गार और वीर रसोंका चित्रण हुआ है और कविका अपनी कृतिको शृङ्गार-वीर रससे युक्त रचना कहना कहाँतक संगत है।

जम्बूके पूर्व जन्मोंकी कथा कहते हुए ऋषि बताते हैं कि एक पूर्व जन्ममें ब्राह्मणपुत्र भवदेव थे। उनके बड़े भाई भवदत्त जैनधर्मकी दीक्षा ले चुके थे। भवदेव का जब विवाह होरहा था भवदत्त आता है, भवदेव विवाह-कार्य अधूरा छोड़कर भाईकी आज्ञा मानता हुआ दीक्षा लेकर चला जाता है। एक ओर उसे किंचित नवविवाहका भी ध्यान है किन्तु वैराग्यसे भी

संपइ पुणो णियत्तं जाए कइ वल्लहे वीरे ॥ २ ॥
सन्धि ६में इस प्रकार एक पद्य है:—
दैंत दरिद्द पर वसण दुम्मणं सरस-कव्व-सव्वस्सं ।
कइ वीर सरिस-पुरिसं धरणि धरंती कयत्थासि ॥१॥

वह पीछे नहीं हठता। कविने भवदेवके भावद्वंद्वका इस प्रकार चित्रण किया है; जब उसका भाई मुनिसे कहता कि भवदेव 'तप चरणु लहेसइ' (तपश्चरण प्राप्त करेगा) वह सोचता है—

सुणंतु मणि डोल्लइ । निट्ठुर केम दियंवरु वोल्लइ ।
तुरिउ तुरिउ घरि जामि पवित्तमि ,
सेसु विवाह कज्जु निव्वत्तमि ।
दुल्लहु सुख्यविलासु व भुंजमि ,
नववहुवाए समउ सुहु भुंजमि ॥२-१२॥

किन्तु भाईके वचनोंका उसे ध्यान आता है—

तो बरि न करमि एहु अपमाणउ,
जेट्ठ सहोयरु जणणु समाणउ ॥२-१३॥

'इसका अपमान कदापि नहीं करूँगा. ज्येष्ठ सहोदर पिताके समान है।' और दीक्षित होनेके लिये स्वीकृति देता है। दीक्षाके समय वह मन्त्रोंका उच्चारण भी ठीक नहीं कर पारहा था; क्योंकि उसका मन नवयौवना पत्नीमें लगा था—

पाढंतहं अक्खरु मउ आवइ ।
लडहंगउ कलत्तु परझायइ ॥२-१४॥

दीक्षित होकर बारह वर्षतक भ्रमण किया और वह भ्रमण करता हुआ अपने ग्राम बर्धमानके पास आया, ग्रामके सम्पर्कके स्मरणसे उसके हृदयमें विषय-वासना जागृत होजाती है। कविने उसकी इन उद्दाम भावनाओंको इस प्रकार चित्रित किया है:—

चिक्कसंतु चित्तु परिओसइ ,
एरिसु दिवसु न हुयउ न होसइ ।
तो वरि घरहो जामिपिय पेक्खमि ,
विसय सुक्ख मणवल्लहु चक्खमि ॥२-१५॥

'चिकने (स्नेहाभिषिक्त) चित्तको वह परितोषित करता है, इस प्रकारका दिन न हुआ है न होगा, तो अवश्य घर जाकर प्रियाका दर्शन करूँगा और मनवल्लभ विषय-सुखोंका आस्वादन करूँगा।'

समयानुकूल भवदत्त आकर उसे संबोधित करता है और वह कुपथसे बच जाता है। इसी प्रसङ्गमें कविने जम्बूचरितके सबसे कोमल और रमणीय स्थलका चित्रण किया है। ग्रामसे लगे हुए चैत्यगृहमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवदेव जाता है और वहाँ एक क्षीणकाय स्त्री तपस्यामें रत बैठी थी, उससे भवदेव अपने और भवदत्तके विषयमें पूछता है। वह स्त्री सब बताती है कि किस प्रकार वे दोनों ब्राह्मणपुत्र संसार तरङ्गोंको पारकर दिगम्बर होगए थे। और भवदेवने नागवसुसे विवाह किया था, वह भवदेवके यौवनावस्थामें तपव्रत लनेकी प्रशंसा करती है; उसने भवदेवको पहिचान लिया था; वह उसकी पत्नी थीः—

तरुणत्तणेवि इंदियदवणु ।
दीसइं पइं मुयवि अएणुकवणु ॥
परिगलिए वयसिसव्वहुविजई,
विसयाहिलास हवि उवसमई ।
कच्चेंपल्लट्टइ को रयणु,
पित्तलइ हेमु विक्कइ कवणु । २-१८

'तरुणावस्थामें इन्द्रियोंका दमन करने वाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन है, अवस्थाके परिगलित होनेपर सभी यती हैं जब कि विषयाभिलाषाएँ उपशमित हो जाती हैं. काँचको रत्नसे कौन बदलेगा और पीतलसे सोनेको कौन बेचेगा।' नागवसु उससे कहती कि उसके जानेपर उसके एकत्रित धनसे उसने वह चैत्य बनवाया है। उसकी धर्मदृढ़ताको सुनकर भवदेव लज्जित होता है, मुनिके पास जाकर सब वृत्तान्त सुनाकर सविशेष दीक्षा लेता है। भवदत्तके साथ तप करता हुआ वह और भवदत्त अनशन करके पण्डितमरणसे देह त्याग कर तृतीय स्वर्गको जाते हैं।

विषयोंकी ओर झुकनेकी मनुष्यकी शाश्वत दुर्बलताका सुन्दर विश्लेषण करते हुए कविने भवदेवको उसपर विजय पाते हुए चित्रित किया है। शृङ्गारके आलम्बन विभाव यहाँ भवदेव और नागवसु हैं। संचारीभावोंका सुन्दर चित्रण हुआ है, पुरानी स्मृतियाँ, ग्रामकी सन्निकटता भवदेवके हृदयमें विषयसुखको जागृत करते हैं अतः उद्दीपन कहे जा सकते हैं. शृङ्गारके पूर्ण चित्रणके लिए कथाकी परम्पराके कारण कवि विवश था. और परिस्थितियोंके कारण नायक नायिका दोनों तपव्रत लेते हैं। दुर्बलताओंसे संघर्ष ही 'वीररस' का यहाँ प्रतीक है. उनपर कथाके पात्र विजय पाते हैं, तपके लिए उनमें 'वीर'का स्थायी 'उत्साह' पाठकोंको दीख सकता है। इस शृङ्गार भावना और 'उत्साह' भावनाका संघर्ष इस सन्धिमें पर्याप्त सुन्दर रूपमें वर्णित हुआ है और वह कविको शृङ्गार वीरकाव्य बनानेमें सहायक है।

भवदेवका जन्म वीतशोकानगरीके राजकुमार के रूपमें होता है। उसका विवाह एकसौ पाँच राजकन्याओंसे कर दिया जाता है, राजप्रासादोंके बाहर जानेमें शिवकुमार (भवदेवका इस जन्मका नाम) पर देखरेख रखी जाती है। एक बार उस नगरीमें सागरचन्द मुनिके आगमसे नगरीमें कोलाहल हुआ (भवदत्तका जन्म सागरचन्द नामसे पुण्डरीकिनी नगरीमें हुआ था और वह मुनि हो गया था)। शिवकुमारने धवलगृहके ऊपरसे मुनिको देखा और उसे जाति स्मरण हो आया। वह मूर्छित होगया और तपव्रत लेना चाहता है, राजा उसे उस पथसे दूर करना चाहता है। राजा और राजकुमारके प्रसङ्गकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं, राजा उसे शृङ्गार और राजवैभवमें रत रहनेके लिए कहता है किन्तु कुमारका मन वैराग्यके लिए दृढ़ है—

आहासइ चक्केसरु तणुरुहु,
कवणु कालु पावज्जते किर तुहु ।
अखयणिहाणु रयणरिद्धिल्ली,
रायलच्छि तुहु भुंजहिं भल्ली ।
भणइ कुमारु ताय जय सुंदरु,
ता कहि चक्कवट्टि हरि हलहर ।
समलकाल णवणव वर इत्ती,
वसुमइं वेसव केण ण भुत्ती । १-८

फिर राजा कहता है कि रागद्वेषका त्याग करनेपर तपव्रतकी क्या आवश्यकता है घरवास करते हुए ही नियम व्रतोंको धारण करना चाहिये। कुमार पिताके वचनको मानकर मन, वचन, कायसे नवविध ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेका व्रत लेता है। तरुणियोंके पास होनेपर भी वह उस ओरसे उदास रहता है। परगृहसे भिक्षा लाता है। बहुत वर्ष तप करनेके पश्चात् समय आनेपर वह विरक्त होगया और देह त्यागकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विद्युन्मालीदेव हुआ। शृङ्गारके समस्त साधन रहते हुए भी शिवकुमारका मन उससे विरक्त रहा उस भावद्वन्द्वको कविने यहाँ समस्त सद्‌उपदेशोंके साथ व्यक्त किया है। शृङ्गारका अर्थ इस प्रसङ्गमें 'विषयाभिलाषा' करना उचित होगा। विषयाभिलाषाओंपर वैराग्य भावनाकी विजय दिखाई गई है। इस सन्धिके अनुसार कृतिका नाम 'शृङ्गार-वैराग्य' कृति कहना उचित होगा, 'शृङ्गारवीर' कृति नहीं।

सन्धि चतुर्थसे जम्बूस्वामी कथा प्रारम्भ होती है। जम्बूकुमार अत्यन्त रूपवान् थे। उनको देखकर नगर की रमणियाँ उनके रूपपर आसक्त होजाती थीं। परकीया ऊढा नायिकाओंके विरहका कविने प्रसङ्गवश वर्णन किया है जिसमें ऊहात्मकता भी पर्याप्त मात्रामें मिलती है। शृङ्गारवर्णनके इस प्रसङ्गकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार उद्धृत की जासकती हैं:—

काहिवि विरहाणल संपलित्तु ।
अंसुजलोह कवोलरिणत्तु ।
पल्लट्टइ हत्थु करंतु सुएणु ।
दंतिमु चूडुल्लउ चुएण चुएणु ।
काहिनि हरियंदण रसु रमेइ ।
लग्गंतु अंगि छमछम छमेइ ॥४–११॥

इस कलात्मक परम्पराका निर्वाह करके कविने समुद्रदत्त नामक उसी नगरमें रहने वाले श्रेष्ठिकी पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री और रूपश्री नामक चार कन्याओंका शिखनख वर्णन प्रस्तुत किया है। वर्णनके अन्तमें कवि कहता है कि किसी अन्य प्रजापतिने इन कुमारियोंका निर्माण किया है:—

जाणमि एक्कु जे विहि घडइ सयलु विजगु सामएणु ।
जिं पुणु आयउ णिम्मविउ कोवि पयावइ अएणु ॥४–१४

जम्बू जैसे अतीव रूपवान् वरके अनुरूप इन अनुपम रूपवती कुमारियोंका जम्बूसे विवाह होजाता है। बड़े कौशलसे कविने नायक-नायिकओंको समान रूपसे युक्त चित्रित किया है। जीवनके ऐसे चित्रमय सुन्दर अवसरके अनुकूल कविने कोमल पदावलीका प्रयोग करते हुए वसन्तका वर्णन किया है। अपभ्रंशमें सङ्गीत, कोमलवृत्ति और शृङ्गारके अनुकूल माधुर्य-गुण-प्रधान ऐसे वर्णनोंको व्यक्त करनेकी क्षमता दिखानेके लिये ऐसे वर्णन अच्छे प्रमाण हैं। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार पढ़ी जासकती हैं:—

मंछ मंदार मयरंद णंदण वणं ,
कुंद करवंद वयकुंद चंदण घणं ।
तरल दल तरल चल चवलि कयलीसुहं,
दक्ख पउमक्ख रुद्दक्ख खोणीरुहं ।
कुसुम रय पयर पिंजरिय धरणीयलं,
तिक्ख नहु चंचु कणयछ्न खंडियफलं ।
रुक्ख रुक्खंमि कप्पयरु सियभासिरी ,
रइवराणत्त अवयएण माहवसिरी ॥४–१६॥

उद्दीपन सामग्रीके रूपमें उद्यान और वसन्तका वर्णन कविने बड़ी सफलता पूर्वक किया है। उपवनमें क्रीड़ा करनेके पश्चात् सभी मिथुन सुरति खेदका अनुभव करते हैं और उसे दूर करनेके लिये जलक्रीड़ा के लिये सब सरोवरमें जाते हैं। जलक्रीड़ाके पश्चात् सब निकलकर वस्त्रादि धारण करते हैं और निवासोंकी ओर जाते हैं। शृंगारके समस्त उपकरणोंसे पूर्ण इस चित्रके साथ जम्बूका शौर्य कविने संग्रामशूर नामक श्रेणिक राजाके भयङ्कर पट्टहस्तीको उनके द्वारा पराजित चित्रित करके दिखाया है। इस सन्धिमें शृंगारका सुन्दर और बहुत कुछ पूर्ण चित्र कविने प्रस्तुत किया है।

पाँचवीं सन्धिसे शृंगारमूलक वीररसका प्रारम्भ होता है। केरल राजाकी पुत्री विलासवतीको रत्नशेखर विद्याधरसे बचानेके लिये जम्बू अकेले ही उससे युद्ध करने जाते हैं। उनमें वीरके स्थायीभाव 'उत्साह'का अच्छा उद्रेक चित्रित किया है, पीछे श्रेणिकराजकी सेना भी बड़े 'उत्साह'से सजधजके साथ चलती है। असाधारण धैर्यके साथ जम्बू रत्नशेखरके साथ युद्ध करनेको प्रस्तुत होते हैं। युद्ध करते समय सैनिकोंके हृदयमें स्वामिभक्तिकी द्योतत वीरोक्तियाँ कहते हैं और अनेक उदात्त भावनाओंका उदय होता है। सैनिकोंकी रमणियाँ भी सैनिकोंको युद्धमें जानेकी प्रेरणा देती हुई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिखती हैं। भयङ्कर युद्ध होता है और परिणामस्वरूप वीभत्स चित्रणकी भी ओर संक्षेपमें कविने ध्यान दिया है। विद्याधर विद्या-बलसे माया-युद्ध करता है। कभी झंझावात चलने लगती है, कभी प्रलयजल बरसने लगता है। अद्भुत रस यहाँ वीरको सहायता करता दिखता है। विद्याधरने राजा मृगाङ्कको बाँध लिया, जम्बूने युद्ध करते हुए राजाको छुड़ा लिया और पराजित करके उसे भगा दिया। जम्बूकी विजयपर नारद आनन्दसे नाचने लगते हैं, सर्वत्र आनन्द होने लगता है। विद्याधर गगनगति प्रकट होकर मृगाङ्क-राजसे जम्बूकुमारका परिचय देता है। वीररसके इस विस्तृत प्रसंगके पश्चात् ही कवि शृङ्गारकी भूमिका प्रारम्भ कर देता है।

मृगाङ्क राजा जम्बूको केरल नगरी दिखाते हैं। नगरकी रमणियाँ जम्बूको देखकर कहने लगती हैं कि विलासवती धन्य है जिसके हाथमें श्रेणिकराजका समस्त राज-वैभव रहेगा। जम्बू और विलासवतीका परिणय होता है। जम्बू मगध पहुँचते हैं और यहींसे शृङ्गार और वैराग्य (संसारमें अनुरक्ति-प्रवृत्ति तथा निवृत्ति) का प्रसङ्ग प्रारम्भ होता है। आठवीं सन्धिसे यह प्रसङ्ग प्रारम्भ होता है। मुनिसे अपने पूर्व भवोंकी कथा सुनकर जम्बूके हृदयमें वैराग्य-भावनाका उदय होता है। दीक्षा देनेके पूर्व गणधर जम्बूसे माता-पिता की आज्ञा लेनेको कहते हैं:—

इय सोऊण मलहरो वोल्लइ वयणं गणहरो ।
तावच्चसु सुहणिहेलणं, पुच्छसु पिय माया जणं ॥८-५॥

जम्बूकी माता पुत्रकी वैराग्य-भावनाको देखकर मूर्छित होजाती है। कुमारकी वैराग्य-भावनासे सभी कुटुम्बी दुखी दिखते हैं किन्तु जम्बूका मन दृढ़ था:—

पिउ मायरिबंधवजंणहिं दुक्खिय ,
मणहिं बुज्झाविउ कहव न बुज्झइ ।
सच्चउ अज्जु जे तवचरणु वइ—
रायमणु लिंटउ कुमारु किमरुज्झइ ॥८-८॥

जम्बूकी निर्वेरपूर्ण मनस्थितिको देखकर भी पद्मश्री आदि चार कन्यायें उनसे परिणय करती हैं। यद्यपि सब लोग उन्हें ऐसा न करनेको समझाते हैं। विवाहके प्रसङ्गमें कविने वैराग्यकी स्थितिको छोड़कर सुन्दर विवाहका वर्णन प्रस्तुत किया है, विवाहके 'दाइजे', तथा भोजनके सरल वर्णन किए हैं, जम्बू नववधुओंके साथ वासगृहमें जाते हैं। इस प्रसङ्गमें कविने महिलाओंके हाव-भावों (चेष्टाओं)का अच्छा चित्रण किया है। जम्बूका मन इन सब व्यापारोंमें में नहीं रमता, उसकी पत्नियाँ अनेक कथाएँ कहती हैं किन्तु वह दृढ़ रहता है। विद्युच्चर भी जम्बूके हृदयमें संसारके प्रति आसक्ति उत्पन्न करानेमें असफल होता है। कथाकी समाप्ति वैराग्यमें होती है। संसारके मायामोहसे विरक्त होकर जम्बू, उनकी पत्नियाँ, विद्युच्चर सभी तपस्या करते हैं और सद्गति प्राप्त करते हैं। कृतिमें कविने वीररस, शृङ्गार और शान्ति रसके सफल चित्र प्रस्तुत किए हैं।

चरित्र चित्रणमें भी कवि पूर्ण सफल हुआ है। पूर्वजन्मोंसे ही जम्बूकी प्रवृत्ति कर्त्तव्यमें दृढ़ और धार्मिक है, जम्बू अत्यन्त साहसी, वीर हैं, उनकी चारित्रिक दृढ़ताको बड़े ही सफल ढङ्गसे कविने व्यक्त किया है—तरुणियोंके पास रहते हुए भी वह उनमें विरक्तिभाव रखता है—

पासट्ठिओवि तरुणी णियरु ,
मणइ इवहि पुंजिउव्व कयरु ॥ ३-६॥

अनेक प्रकारकी उक्तियोंका उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता—

गउ अद्धरत्त वोल्लं तहो तो, वि कुमारु ण भवे रमइ ॥६-११

साहसकी परीक्षाके दो प्रसङ्ग मिलते हैं—उन्मत्त हाथीको वह परास्त कर देता है (संधि ४) और अकेला ही विद्याधर रत्नशेखर और उसकी सेनापर विजय कर लेता है। उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है इसी लिए विद्युच्चर भी उसका अनुसरण करता है। इन सब गुणोंके साथ उसमें महज्जनोचित शिष्टाचारोंके भी दर्शन होते हैं। माताकी आज्ञाका वह पालन करता है। विद्युच्चरका परिचय उसकी माता अपने भाईके रूपमें कराती है—वह देखते ही खड़ा होजाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है, प्रणाम करता है और कुशल पूछता है:—

तं नियविकुमार समुट्ठियउ ,
दूरपणमिय सिरु समहिट्ठियउ ।
अण्णोण्णालिंगण रसभरिया ,
विहि पीढहिं वेण्णेवि वइसरिया ।
पुच्छिज्जइ कुसलु पंथ समिउ ,
बहुदिवस माम कहि कहि भमिउ ॥९–१८॥

जम्बूका चरित्र सब प्रकारसे एक धर्ममें दृढ़ आदर्श योद्धा, उदात्तचरित्र व्यक्ति, विरक्त त्यागी महापुरुषका है। अन्य पात्रोंके चरित्रमें सम्यक् विकास नहीं मिलता और न वह आवश्यक ही था। विद्युच्चरके दर्शन एक सब प्रकारसे भले किन्तु चोरके रूपमें होते हैं—अन्तमें वह भी तपस्वी हो जाता है। महिलाओंके चरित्रोंमें जम्बूकी पत्नियों और उसकी माताके चित्र मिलते हैं। उनमें स्वाभाविक कोमलता और सरता है। वे सब अन्तमें आर्यिकाएँ होजाती हैं। प्रायः ऐसी धारणा है कि जैनसाहित्यमें स्त्रियोंकी निन्दा की गई है वह ग़लत है। इन कृतियोंमें आदर्शके चित्र मिलते हैं। नारीके प्रति घृणाका भाव नहीं मिलता, मूल दुष्प्रवृत्तिका कहीं-कहीं उन्हें कारण मानकर उनकी भर्त्सना अवश्य की गई है यथा जब जम्बूकी पत्नियाँ हाव-भाव दिखाकर उसे आसक्त करना चाहती हैं तब वह कहता है:—

हा हा महिला-मोह णिबद्धउ ,
मयण-काल-सप्पहिं जगु खद्धउ ।
वुच्चइ अहरु अमिय महु वासउ ,
अवरु जो णाउ ठविउ वयणासउ ॥ ९–१ ॥

वर्णनः—अन्य अपभ्रंश जैन काव्योंके समान प्रस्तुत कृतिमें भी अनेक समृद्ध वर्णन मिलते हैं। नगर, ग्राम, अरण्य, ऋतु सूर्योदय, सूर्यास्त, नख-शिख, सेना युद्ध आदिके सरल और कहीं-कहीं अलंकृत वर्णन कविने प्रस्तुत किये हैं। बड़े-बड़े वर्णनोंके अतिरिक्त छोटे छोटे चित्र भी कविने सफलता पूर्वक चित्रित किए हैं:—श्रेणिकराजके उन्मत्त हाथी के चित्रणसे कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं; उसकी विकरालताका स्पष्टस्वरूप सामने आजाता है:—

उद्दंड - सुंडकय - सलिलविट्ठि ,
पयभार कडक्किय कुम्मपिट्ठि ।
दुद्धर-रिउ वलहरु णं सुव जलहरु—
गरुय गज्जिर - रव - भरियदरि ।
जण-मारण-सीलउ वइवसलीलउ—
सो संपत्तउ तेत्थु करि ॥४–२०॥

इसी प्रकार थोड़ेसे शब्दोंमें विद्युच्चरका चित्रण किया है:—

पयडिय किराउ मयवेसपट्टु, आजाणु लंब परिहाण पट्टु ।
वंकुडिय कच्छकयढिल्ल कडि, कण्णंत लुलाविय केसलडि ।
पुट्ठीनिहित्त कयबंद्ध भरु, उग्गंठिय वि सरिस कुंचधरु ।
आउत्तमंग पंगुरियतणु. सिढिलाह रोट्टदंतरु वयणु ।
डोल्लंत बाहुलय ललिय-करु. वासहरि पयट्टउ विज्जुच्चरु ।
॥ ९–१८ ॥

अलङ्कारोंके प्रयोग कविने दो प्रकारके किये हैं, एक चमत्कार प्रदर्शनके लिये और दूसरे स्वाभाविक प्रयोग। प्रथम प्रकारके प्रयोगके उदाहरणरूपमें विंध्याटवी वर्णनसे निम्न पंक्तियाँ उद्धृत की जासकती हैं; जिनमें कोई रस नहीं है:—

भारह - रण - भूमिव स - रहभीए ,
हरि अज्जुण णउल सिहंडि दीए ।
गुरु आसत्थाम कलिंगवार ,
गयगज्जिर ससर महीस सार ।
लंकाणयरी व स - रावणीय ,
चंदणहिं चार कलहावणीय ।
सपलास सकंचण अक्खघट्ट ,
सविहीसण कइकुल फलरसट्ट ॥ ५–८ ॥

उपर्युक्त पंक्तियोंमें श्लेषके प्रयोगसे दो अर्थ निकलते हैं, स-रह (रथ सहित और एक भयानक जन्तु, हरि—कृष्ण और सिंह, अर्जुन और वृक्ष, नहुल और नकुल जीव; शिखडि और मयूर आदि)।

इस कवि-चमत्कारके अतिरिक्त सरसता वर्द्धक प्रयोग भी कविने किये हैं। यद्यपि वे हैं इसी प्रकारके; माला यमकका एक उदाहरण इस प्रकार है:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तउय संजायं महादंड जुज्झं, जुज्झंतपत्ति कोंतग्गखग्गि।
वावल्ल भल्ल सवल्ल, मुसुंढिए णीहम्ममाए अएणोएणं।

अएणोएणदंसणारुट्ठणिट्ठवियमिट्ठ—
सुएणासणनिलं, तमत्तमायंगं।
मायंगदंत संघट्ट णिहसणुट्ठंतहुय ,
वहुफुलिंग पिंगलिय सुरवइविमाणं॥
सुरवहूविमाण संछण्णगयण........॥ ७-६॥

वीप्सा, विभावना और यमकके एक साथ प्रयोग निम्न पंक्तियोंमें पढ़ सकते हैं:—

दिणि-दिणि रयणिमाणु जहं खिज्जइ ,
दूरपियाए णिदतिह खिज्जइ।
दिवि-दिवि दिवस पहरु जिह वट्टइ ,
कामुयाए तिह रह-रसु वट्टइ।
दिवि-दिवि जिह चूयउ मउरिज्जइ ,
माणिणीमाणहो तिहमउरि(व)ज्जइ।
सलिलु णिवाणहिं जिह परिहिज्जइ ,
तिंह भूसणु मिहुणहिं परिहिज्जइ।
मालइ कुसमु भमरु जिह वज्जइ ,
घरे घरे गहेरु तूरु तहिं वज्जइ॥३-१२॥

सादृश्य-मूलक अलङ्कारोंके प्रयोग कविने बड़े स्वाभाविक ढङ्गसे किये हैं। इस प्रकारके प्रसङ्गोंमें कविने बड़ी सरल कल्पनाके कहीं-कहीं प्रयोग किये हैं—एक-दो उदाहरण इस प्रकार हैं। सूर्यास्तके समय सूर्यका वर्णन कविने निम्न पंक्तियोंमें किया है:—

परिपक्कउ एहरुम्मवहो णिवडिउ।
फलुव दिवायर मंडलु विहडिउ॥

रत्तंवर जुवलउ णेसेविणु। कुंकुम पंके पियले करेविणु॥
खणु अच्छेवि दुक्ख संभलिउ। अप्पउ घोरसमुद्दे घल्लिउ॥
॥ ८-१३॥

और भी इसी प्रसङ्गमें कुछ पंक्तियाँ हैं; चन्द्रोदय का वर्णन है:—

भमिए तमंधयार वर यच्छिए। दिएणउ दीवउ एं णहलच्छिए
जोएहारसेण भुअणु किउ सुद्धउ। खीरमहएणवम्मि एं छुद्धउ
किं गयणाउ अमियलव विहडहिं।
किं कप्पूर पूर कण णिवडहिं॥८-१४॥

भ्रान्तिके दो-एक उदाहरण इस प्रकार हैं:—

जालगवक्खय पसरिय लालउ।
गोरस भंतिए लिहए विडालउ॥८-१४॥

'गवाक्षजालमेंसे प्रकाश आरहा था, उसे गोरस-भ्रान्तिसे विडाल चाट रहा था।'

गेरहइ समरिपडिउ वेरीहलु।
मएणेविणु करि सिर मुत्ताहलु॥८-१४॥

'शबरी पड़े हुए बेर फलको शिरका मुक्ताफल समझकर ग्रहण करती है।'

इस प्रकार अनेक अलङ्कारोंके सुन्दर प्रयोग कृतिमें हुए हैं, जिनसे सौन्दर्य-वृद्धि हुई है। सुभाषित और लोकोक्तियाँ भी व्यवहृत हुई हैं।

इसके अतिरिक्त कृतिमें आदिसे अन्त तक जम्बूकी वैराग्य-भावनासे पर्ण धार्मिक वातावरण है, कापालिक, जोगी, सिद्धों आदिके कई स्थलोंपर उल्लेख मिलते हैं जो तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक परिस्थितिपर प्रकाश डाल सकते हैं।

कृतिमें अपभ्रंशके प्रिय और प्रचलित छन्दोंके प्रयोग हुए हैं—जैसे घत्ता, पज्झटिका प्रमुख हैं किन्तु उनके अतिरिक्त स्रग्विणी, भुजङ्गप्रयात, द्विपदी, दंडक, दोहाके प्रयोग किए हैं अन्त्यनुप्रास (यमक)का सर्वत्र छन्दोंमें प्रयोग किया है और कहीं-कहीं अन्तर्यमकका भी प्रयोग मिलता है। प्रतियोंका ठीक अध्ययन करने पर छन्दोंका सम्यक् अध्ययन किया जा सकता है। लय, सङ्गीत प्रसङ्गके अनुकूल बदेलनेकी अपूर्व क्षमता वीरकी इस कृतिमें मिलती है।

कृतिकी भाषा अन्य जैन अपभ्रंश चरित काव्योंके समान ही सौरसेनी अपभ्रंश है। स्वयम्भू और पुष्पदन्तकी वर्णनशैलीका अनेक स्थलोंपर प्रभाव लक्षित होता है। कुछ गाथा प्राकृतमें भी मिलते हैं।

प्रस्तुत कृति परम्परागत प्राप्त वैराग्यपूर्ण जम्बूके चरित्रको काव्यात्मक ढङ्गसे प्रस्तुत करनेका एक अभिनव प्रयास है। कवि बहुत दूर तक उसे महाकाव्यका रूप देनेमें सफल हुआ है। रस, अलङ्कार वर्णन वीरोदात्त नायक आदि अनेक महाकाव्यकी विशेषताएँ कृतिमें मिलती है। क्या ही अच्छा हो यदि यह कृति शीघ्र प्रकाशमें आ सके।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्मभूषण ब्र० शीतलप्रसादजीके पत्र

[गताङ्कसे आगे]

(२२) लखनऊ २३-१-२७

डा० हर्मन जैकोबीको महापुराण प्राकृत पुष्पदन्त कृत चाहिये सो यह लिखित देहली व जैपुरके भण्डारोंमें है। आप एक प्रति स्वाध्यायके लिये तुर्त भिजवा देवें जो शुद्ध होवे, अपभ्रंश भाषाके अभ्यासी हैं। भूलें नहीं। उनसे पहले पत्र व्यवहार करें।

(२३) वर्धा १६-१

पत्र पाया देहलीमें प्रो० ग्लैसीनैपका व्याख्यान व स्वागत कैसा हुआ। भाई चम्पतरायजीके साथ वे कुछ दिन घूमें तो ठीक हो। आपकी जयन्तीमें हमारा आना शायद ठीक न होगा। लोग घृणा करेंगे, वस बिना भले प्रकार विचार किये मुझे न बुलाना। परिषदका जलसा कहीं करावें।

(२४) लखनऊ २६-११

पत्र ता० २३-११ पाया।

१–पुस्तक कामताप्रसादको भेजी है

२–जीवकांड छप चुका, कर्मकांड चालू है

३–अभी १ माससे अधिक ठहरना होगा

४–अजितप्रसादजीको आप स्वयं लिखें, मेरे कहनेसे न आएँगे

५–आप पुस्तकका प्रचार कर रहे हैं धन्यवाद है खूब अजैनोंको बाँटनेका उद्यम करें।

६–तत्वार्थसूत्रका अनुवाद जुगमन्दरदास कृत आपने देखा होगा उसीको चम्पतरायजीसे करवाया जावे

७–यहाँसे मेरे पास Leensus of India 1921 नहीं है आप नकल भिजवा दें तो हम मित्रमें छाप दें।

मदरास स्मारक तैयार है ५००) लगेंगे कोई दानी हो तो लिखें। सबसे धर्मस्नेह कहें पं० फतहचन्द, महबूबसिंह, उमरावसिंह आदिसे

(२५) ४-१-२७

१–ट्रैक्टोंकी प्राप्ति छपने भेज दी है

२–लेख मैं जनवरीके अन्त तक भेजनेकी चेष्टा करूँगा

३–केवल चम्पतरायजीको कोई अच्छा पद देना चाहिये यह नाम पसन्द नहीं है

४–आपने अंग्रेजी पत्र बहुत अच्छा छपवाया है

५–आप हिन्दी साहित्यज्ञाताके नाम महेन्द्रकुमार सम्पादक 'वीर सन्देश' मोती कटरा आगरा जैन मन्दिरसे जाने

६–पंडित गिरिधर शर्मा झालरापाटन हिन्दीके अच्छे विद्वान हैं। डा० गङ्गानाथझा अलाहाबादको भी सन्देशके लिए लिखें। जो नाम आपने दिये हैं उनको बुला सकते हैं।

जुगमन्दरलाल बारिस्टरका पग अब अच्छा है उनको बुलावें या सभापति बनानेकी चेष्टा करें।

आप उत्साहसे काम करते रहें। सच्चे भावसे करें, नाम न चाहें प्रचार चाहें, यश स्वयं होगा।

लखनऊ परिषद्में आप मित्र-मण्डली सहित जरूर पधारें व उत्साह बढ़ावें, बाबू उमरावसिंह, जौहरीमल आदिको लावें। मेरा धर्मस्नेह सबसे कहें।

(२६) लखनऊ १९-१-२७

१–आप सत्यभावसे उद्योग करें सफलता होगी। पद चम्पतरायजीको 'जैनसिद्धान्तरत्न' देना ठीक होगा। अपनी कमेटीमें पास करा लेवें ड्राफ्ट फिर भेज देंगे।

२–सभापति मोतीसागरको १ दिन करें व १ दिन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रोफेसर हीरालालको करें, वे छपा हुआ व्याख्यान ऐतिहासिक अच्छा देंगे या जे. एल. जैनी आसकें तो अच्छा है। मोटो आप तजवीज करें। राय ले लेवें।

जैनमित्रके खास अङ्कके लिये आप प्रकाशक कापडियाजीसे पत्र व्यवहार करें।

जिनेन्द्रमतदर्पण २ प्रति व हिन्दीके दो ट्रैक्ट और जिनसे जैनधर्मका ज्ञान हो वी० पी० से

सिंघई कमलापत भगवानदास जैन वारासिवनी, जि० बालाघाट सी. पी., शीघ्र भेज दें।

(२७) लखनऊ २६-१-२७

आपकी इच्छानुसार सनातनजैनमत पुस्तक लिखकर बड़े परिश्रमसे आज रजिस्ट्रीसे भेजी है। यह बड़ी उपयोगी पुस्तक है। जल्सेमें जितने पढ़े-लिखे जैन, अजैन आवें सबको बाँटने लायक है सो आप २००० छपवालें, मूल्य भी रखें। अपनी कमेटीके मेम्बरोंको जमाकर सुना दें कोई बात बदलनेकी कहें तो मुझे पत्र द्वारा लिखें, कापीमें न बदलें जैसी मैंने लिखी है वैसी ही छापें. सूरतवाले जल्दी छाप सकेंगे वे मेरे अक्षर पहचानते हैं वहीं अच्छे कागज, टाईपमें छपवावें। मैंने सूरतको लिख दिया है। नत्थनलालजी व शम्भूदयालजीको जरूर बिठा लेना। पुस्तक सुनाकर राय मेरेको लिखना, जिनेन्द्रमतदर्पण ५ प्रति अन्य कुछ हिन्दी-उर्दूके ट्रैक्ट परिषद्में बाँटनेको भेज देवें। आप भी मित्रों सहित पधारें अवश्य, यहाँ प्रचार भी कुछ होगा फिर वहाँसे गयाजी चले जावें। मेरा लेख सनातनजैनमतपर १॥ घण्टा होगा। यह प्रोग्राममें रखना, समय रातका रखना, पहले या मध्य में रखना मैं यथाशक्ति आनेकी कोशिश करूँगा। आप उत्साहसे काम करें। सर्व भाइयोंसे धर्मस्नेह कहें।

(२८) १९-३-२७

आपका जल्सा ता० १३, १४, १५को है ठीक लिखें। फरीदकोट वाले जोर दे रहे हैं। मैं ऐसा चाहता हूँ कि ता० १३की रातको देहलीसे जाऊँ या अगर ९॥ रातकी गाड़ीमें न जा सकूँ तो सबेरे ५ बजे जाकर ४ बजे फरीदकोट पहुँचूँ। वहाँ भाषण देकर ता० १४की रातको चलकर १५को सबेरे देहली आ-जाऊँ। वहाँसे १५की रातको अवश्य बनारस जाना होगा। ता० १७को वार्षिकोत्सव है। वहाँ जाना बहुत जरूरी है उससे धर्मकी जागृति होगी। पं० दरबारी-लालके लिए सेठ ताराचन्दको बराबर लिखते रहें।

(२९) काशी ४-७-२७

लखनऊमें हमको एक जैनधर्मके ज्ञाता अजैन विद्वान्से भेंट हुई इनका पता यह है। आगामी जयन्तीपर इनसे भी लेख मँगाइये। पुस्तकों व ट्रैक्टों का प्रचार करनेको पत्रोंमें नोटिस आदि निकालने चाहिये। भाई चम्पतरायजीसे कोई धार्मिक सेवा लेनी योग्य है।

डा० प्राणनाथ डी. एस. सी. (लन्दन)
पी. एच. डी. (वायना) विद्यालङ्कार, एम. आर. ए. एस.
C/o इलाहाबाद बैङ्क, बनारस

(३०) वर्धा १६-३-२८

१—लेख भेज चुका हूँ पहुँच दें व सदुपयोग करें सूरतमें ही छपवावें।

२—काङ्गड़ीमें सार्वधर्म सम्मेलनमें मैं भाषण दे सकता हूँ। एक तो विषय मालूम हो व समय नियत होजावे। आप मण्डलकी ओरसे भिजवादें व उनका स्वीकारता पत्र मुझे भेज दें तो मैं तैयारी करूँ। वहाँ ठहरने आदिका प्रबन्ध योग्य होना उचित होगा।

३—दक्षिणमें पूनाके एक मराठी विद्वानने जैनधर्म धारण किया है वह भाषण भी दे सकता है उसका नाम जैनमित्र इस वर्षमें है उसका एक लेख छपा है मैं जैनी क्यों हुआ। आप फाइलमें देख लेंवे वह आसकता है उसके लिए आप प्रोफेसर ए. वी लट्ठे दीवान कोल्हापुरको व संपादक प्रगति आणिजिन विजय साङ्गलीकेटको लिखें। जीवदया सभा आगरामें दयाके संपादक ब्राह्मण थे विद्वान् हैं जैनधर्म धारण किया है वह भी कुछ कह सकेंगे। (क्रमशः)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीरसेवामन्दिर सरसावाके प्रकाशन

१ अनित्य-भावना—

आ० पद्मनन्दिकृत भावपूर्ण और हृदय-ग्राही महत्वकी कृति, साहित्य-तपस्वी पंडित जुगलकिशोरजी मुख्तारके हिन्दी-पद्यानुवाद और भावार्थ सहित। मूल्य।)

२ आचार्य प्रभाचन्द्रका तत्त्वार्थसूत्र—

सरल-संक्षिप्त नया सूत्र-ग्रन्थ, पं० जुगल-किशोरजी मुख्तारकी सुबोध हिन्दी-व्याख्या-सहित। मूल्य।)

३ न्याय-दीपिका—

(महत्वका नया संस्करण)—अभिनव धर्मभूषण-यति रचित न्याय-विषयकी सुबोध प्राथमिक रचना। न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल कोठिया द्वारा सम्पादित, हिन्दी अनुवाद, विस्तृत (१०१ पृष्ठकी) प्रस्तावना, प्राक्कथन, परिशिष्टादिसे विशिष्ट, ४०० पृष्ठ प्रमाण, लागत मूल्य ५)। इसकी थोड़ी ही प्रतियाँ शेष रही हैं। विद्वानों और छात्रोंने इस संस्करणको खूब पसन्द किया है। शीघ्रता करें। फिर न मिलने पर पछताना पड़ेगा।

४ सत्साधु-स्मरणमङ्गलपाठ—

अभूतपूर्व सुन्दर और विशिष्ट सङ्कलन, सङ्कलयिता पंडित जुगलकिशोरजी मुख्तार। भगवान महावीरसे लेकर जिनसेनाचार्य पर्यन्त के २१ महान् जैनाचार्योंके प्रभावक गुणस्मरणों से युक्त। मूल्य ॥)

५ अध्यात्म-कमल-मार्त्तण्ड—

पञ्चाध्यायी तथा लाटीसंहिता आदि ग्रन्थों के रचयिता पंडित राजमल्ल-विरचित अपूर्व आध्यात्मिक कृति, न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल कोठिया और पं० परमानन्दजी शास्त्रीके सरल हिन्दी अनुवादादि-सहित तथा मुख्तार पण्डित जुगलकिशोरजी-द्वारा लिखित विस्तृत प्रस्तावना से विशिष्ट। मूल्य १॥)

६ उमास्वामिश्रावकाचार-परीक्षा—

मुख्तार श्रीजुगलकिशोरजी-द्वारा लिखित ग्रन्थ-परीक्षाओंका इतिहास-सहित प्रथम अंश। मूल्य चार आने।

७ विवाह-समुद्देश्य—

प० जुगलकिशोरजी मुख्तार-द्वारा रचित विवाहके रहस्यको बतलानेवाली और विवाहोंके अवसरपर वितरण करने योग्य सुन्दर कृति। ॥)

वीरसेवामन्दिरमें सभी साहित्य प्रचारकी दृष्टिसे तैयार किया जाता है, व्यवसायके लिये नहीं। इसीलिये कागज़, छपाई आदिके दाम बढ़ जानेपर भी पुस्तकोंका मूल्य वही पुराना (सन् १९४३का) रखा है। इतनेपर भी १०) से अधिककी पुस्तकोंपर उचित कमीशन दिया जाता है।

प्रकाशन विभाग—वीरसेवामन्दिर, सरसावा (सहारनपुर)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ काशीके प्रकाशन

१. **महाबंध**—(महधवल सिद्धान्त-शास्त्र) प्रथम भाग । हिन्दी टीका सहित मूल्य १२) ।

२. **करलक्खण**—(सामुद्रिक-शास्त्र) हिन्दी अनुवाद सहित । हस्तरेखा विज्ञानका नवीन ग्रन्थ । सम्पादक—प्रो० प्रफुल्लचन्द्र मोदी एम० ए०, अमरावती । मूल्य १) ।

३. **मदनपराजय**— कवि नागदेव विरचित (मूल संस्कृत) भाषानुवाद तथा विस्तृत प्रस्तावना सहित । जिनदेवके कामके पराजयका सरस रूपक । सम्पादक और अनुवादक-पं० राजकुमारजी सा० । मू० ८)

४. **जैनशासन**—जैनधर्मका परिचय तथा विवेचन करने वाली सुन्दर रचना । हिन्दू विश्वविद्यालयके जैन रिलीजनके एफ० ए० के पाठ्यक्रममें निर्धारित । मुखपृष्ठपर महावीरस्वामीका तिरङ्गा चित्र । मूल्य ४।-)

५. **हिंदी जैन-साहित्यका संक्षिप्त इतिहास**—हिन्दी जैन-साहित्यका इतिहास तथा परिचय । मूल्य २॥) ।

६. **आधुनिक जैन-कवि**—वर्तमान कवियोंका कलात्मक परिचय और सुन्दर रचनाएँ । मूल्य ३॥) ।

७. **मुक्ति-दूत**—अञ्जना-पवनञ्जयका पुण्यचरित्र (पौराणिक रोमाँस) मू० ४॥)

८. **दो हजार वर्षकी पुरानी कहानियां**—(६४ जैन कहानियाँ) व्याख्यान तथा प्रवचनोंमें उदाहरण देने योग्य । मूल्य ३) ।

९. **पथचिह्न**—(हिन्दी-साहित्यकी अनुपम पुस्तक) स्मृति रेखाएँ और निबन्ध । मूल्य २) ।

१०. **पाश्चात्यतर्कशास्त्र**—(पहला भाग) एफ० ए० के लॉजिकके पाठ्यक्रमकी पुस्तक । लेखक—भिक्षु जगदीशजी काश्यप, एफ० ए०, पालि-अध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी । पृष्ठ ३८४ । मूल्य ४।) ।

११. **कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न**—मूल्य २) ।

१२. **कन्नडप्रान्तीय ताडपत्र ग्रन्थ-सूची**—(हिन्दी) मूडबिद्रीके जैनमठ, जैनभवन, सिद्धान्तवसदि तथा अन्य ग्रन्थ-भण्डार कारकल और अलिपूरके अलभ्य ताडपत्रीय ग्रन्थोंके सविवरण परिचय । प्रत्येक मन्दिरमें तथा शास्त्र-भण्डारमें विराजमान करने योग्य । मूल्य १३) ।

वीरसेवामन्दिरके सब प्रकाशन भी यहाँपर मिलते हैं

प्रचारार्थ पुस्तक मँगाने वालोंको विशेष सुविधाएँ

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Regd. No. A-731

शेर-ओ-शायरी

[उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज़्म]

प्राचीन और वर्त्तमान कवियोंमें सर्वप्रधान

लोक-प्रिय ३१ कलाकारोंके मर्मस्पर्शी पद्योंका सङ्कलन और उर्दू-कविताकी गति-विधिका आलोचनात्मक परिचय

प्रस्तावना-लेखक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति महापंडित राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं—

'शेरोशायरी"के छ सौ पृष्ठोंमें गोयलीयजीने उर्दू-कविताके विकास और उसके चोटीके कवियोंका काव्य-परिचय दिया। यह एक कवि-हृदय, साहित्य-पारखीके आधे जीवनके परिश्रम और साधनाका फल है। हिन्दीको ऐसे ग्रन्थोंकी कितनी आवश्यकता है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। उर्दू-कवितासे प्रथम परिचय प्राप्त करनेवालोंके लिये इन बातोंका जानना अत्यावश्यक है। गोयलीयजी जैसे उर्दू-कविताके मर्मज्ञका ही यह काम था, जो कि इतने संक्षेपमें उन्होंने उर्दू "छन्द और कविता"का चतुर्मुखीन परिचय कराया। गोयलीयजीके संग्रहकी पंक्ति-पंक्तिसे उनकी अन्तर्दृष्टि और गम्भीर अध्ययनका परिचय मिलता है। मैं तो समझता हूँ इस विषयपर ऐसा ग्रन्थ वही लिख सकते थे।"

कर्मयोगीके सम्पादक श्रीसहगल लिखते हैं—

"वर्षोंकी छानबीनके बाद जो दुर्लभ सामग्री श्रीगोयलीयजी भेंट कर रहे हैं इसका जवाब हिन्दी-संसारमें चिराग़ लेकर ढूँढनेसे भी न मिलेगा, यह हमारा दावा है।"

सुरुचिपूर्ण मुद्रण, मनमोहक कपड़ेकी जिल्द
पृष्ठ संख्या ६४० — मूल्य केवल आठ रुपए

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड, बनारस

प्रकाशक—पं० परमानन्द जैन शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ काशीके लिये आशाराम खत्री द्वारा रॉयल प्रेस सहारनपुरमें मुद्रित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org